प्रथम वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सभ्यग्ज्ञान प्रवेशिका) अभ्यास ९

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिन्दी अनुवाद :- सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड

सौजन्य : अ.सौ. लेखाबेन धनपतिभाई मोमाया - कच्छ बारोई - हाल जलगाँव

सूत्र - विधि और रहस्य

-: मुहपत्ती पडिलेहण - वांदणा :-

एक खमासमण देकर आसन के उपर उकडूँ बैठकर कहना : **इच्छाकारेण संदिसह भगवन ! छेडा मुहपत्ती पडिलेहण करुं ?** गुरु कहे : **करो** ! तब शिष्य **''इच्छं''** ऐसा कहकर दृष्टि पडिलेहण के लिये उत्तरासंग के छोर अथवा मुहपत्ती पडिलेहण निम्नानुसार बोल से करें उत्तरासंग के छोर (आँचल) अथवा मुहपत्ती पडिलेहण के पचीस और शरीर पडिलेहण के पचीस मिल कर पचास बोल -

सुतत्थ - तत्तदिट्ठि हृदय मां धरुं	**१**
समकित मोहनी, मिश्रमोहनी, मिथ्यात्व मोहनी परिहरुं	**३**
कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग परिहरुं	**३**

सुदेव, सुगुरु, सुधर्म आदरुं	**३**
कुदेव, कुगुरु, कुधर्म परिहरुं	**३**
ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदरुं	**३**
ज्ञान विराधना, दर्शन विराधना, चारित्र विराधना परिहरुं	**३**
मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति आदरुं	**३**
मनोदंड, वचनदंड, कायदंड, परिहरुं	**३**

	कुल -२५
हास्य, रति, अरति परिहरुं	**३**
शोक, भय, दुगंच्छा परिहरुं	**३**
कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या परिहरुं	**३**
ऋद्धि गारव, रस गारव, साता गारव परिहरुं	**३**
माया शल्य, नियाण शल्य, मिच्छादंसण शल्य परिहरुं	**३**
क्रोध, मान परिहरुं	**२**
माया, लोभ परिहरुं	**२**
पृथ्वीकाय विराधना, अपकाय विराधना, तेउकाय विराधना वाउकाय विराधना, वनस्पतिकाय विराधना, त्रसकाय विराधना हुई होय, ते सवि हुं मने, वचने, कायाये करी मिच्छामि दुक्कडं	**६**

	कुल - २५

पचास बोल पडिलेहण की विधि

१) सुत्तत्थ तत्तदिट्ठि हृदय मां धरुं ऐसा चिंतन करके मुहपत्ती अथवा उत्तरासंग का छोर को खोलकर उसके दोनो बाजु दृष्टि से देख लेना । फिर मुहपत्ती के किनारों को जोड कर दायें हाथ में पकडकर २) समकित मोहनी ३) मिश्रमोहनी ४) मिथ्यात्व मोहनी परिहरुं, ऐसा कहकर मुहपत्ती बायें हाथ की हाथेली पर घिस कर निकालना फिर बांये हाथ में मुहपत्ती पकडकर) कामराग ६) स्नेहराग ७) दृष्टिराग परिहरुं ऐसा कहकर दांये हाथ की हथेली पर घिस कर निकालना । पश्चात दाये हाथ में मुहपत्ती पकडकर ८) सुदेव ९) सुगुरु १०) सुधर्म आदरुं ऐसा कह कर बांये हाथ पर तीन बार झटकारना ११) कुदेव १२) कुगुर १३) कुधर्म परिहरुं ऐसा कह कर मुहपत्ती बांये हाथ की हथेली पर तीन बार घिस कर निकालना १४) ज्ञान १५) दर्शन १६) चारित्र, आदरुं ऐसा कहकर बांये हाथ पर मुहपत्ती हाथ को छुए बगैर तीन बार झटकारना १७) ज्ञान विराधना १८) दर्शन विराधना १९) चारित्र विराधना परिहरुं कह कर मुहपत्ति बांये हाथ की हथेली पर तीन बार घिस कर निकालना, फिर २०) मनोगुप्ति २१) वचन गुप्ति २२) काय गुप्ति आदरुं कह कर बांये हाथ पर पहले की तरह ही तीन बार झटकारना २३) मनोदंड २४) वचनदंड २५) काटादंड परिहरुं कह कर हाथ की हथेली पर तीन बार

घिस कर निकालना ।

इस तरह सब मिलकर उत्तरासंग की अथवा मुहपत्ती की पच्चीस पडिलेहणा हुई । १) हास्य २) रति, ३) अरति परिहरुं कहकर दांये हाथ में मुहपत्ती पकड कर बांयी भुजा का तीन बार प्रमार्जन करना । १) शोक २) भय ३) दुगंच्छा परिहरुं कहकर बांये हाथ में मुहपत्ती पकडकर दांयी भुजा का प्रमार्जन करना । १) कृष्ण लेश्या २) नील लेश्या ३) कापोत लेश्या परिहरुं कह कर मुहपत्ती से मस्तक का प्रमार्जन करना । १) ऋध्दिगारव २) रस गारव ३) साता गारव परिहंरु कह कर तीन बार मुख का प्रमार्जन करना । १) माया शल्य २) नियाण शल्य ३) मिच्छा दंसण शल्य परिहरुं कह कर तीन बार हृदय का प्रमार्जन करना १) क्रोध २) मान परिहरुं कह कर दांये हाथ में मुहपत्ती पकड कर बांयी पसलीयों का प्रमार्जन करना । १) माया २) लोभ परिहरुं कह कर बांये हाथ में मुहपत्ती पकड कर दांयी पसलीयों का प्रमार्जन करना १) पृथ्वीकाय विराधना २) अपकाय विराधना ३) तेउकाय विराधना कह कर चरवले से बांया पैर प्रमार्जना ४) वाउकाय विराधना ५) वनस्पतिकाय विराधना ६) त्रसकाय विराधना हुई हो वह सभी मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं कह कर चरवले से दांया पैर प्रमार्जना ।

इस प्रकार शरीर की पच्चीस पडिलेहणा हुई । इन पच्चीस पडिलेहणा में से तीन मस्तक की, तीन हृदय की, तथा चार पसलीयों की सब मिलकर दस पडिलेहणा श्राविकाओं ने करना नहीं ।यानि कि श्राविकाओं के लिये चालीस बोल की चालीस पडिलेहणा जानना । श्राविकायें आंचल के छोर अथवा मुहपत्ती से पडिलेहणा करें ।

इन पचास बोल में उपादेय तथा हेय का विवेक सुंदर रुप से किया गया है । प्रवचन यह तीर्थं हैं । उसके अंगरुप सुत्र और अर्थ को तत्व दृष्टि से हृदय में धारण करने के लिये कहा गया है । यानि सूत्र और अर्थ सत्य हैं ऐसी अचल श्रद्धा रखना । पश्चात उस श्रद्धा में अंतराय करने वाले सम्यकत्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय इन तीनप्रकार के मोहनीय कर्म को त्यागने की भावना करनी है । मोहनीय कर्म में भी राग खास त्यागने जैसा है उसमें पहले कामराग और फिर स्नेहराग तथा अंत में दृष्टिराग त्यागने को कहा है । उन्हें त्यागे बिना सुदेव, सुगुरु, सुधर्म सम्यक रुप से स्वीकार नहीं सकते ।

सुदेव, सुगुरु, सुधर्म को स्वीकारने की और कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को त्यागने की भावना की जाती है । ऐसा करने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना सुंदर रुप से हो और उसके लिये ज्ञान, दर्शन चारित्र की विराधना त्यागना ही चाहिये । मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति स्वीकारना चाहिये । मनदंड, वचनदंड, कायदंड त्यागना चाहिये ऐसी भावना व्यक्त हुई है ।

इस प्रकार उपादेय और हेय की भावना के पश्चात खास त्यागने योग्य और मिथ्या दुष्कृत देने योग्य भावना करने की बताई है । उसमें प्रथम चारित्र मोहनीय कर्म, प्रकृति से उत्पन्न होते हास्यादि का त्याग करना । हास्य रति अरति छोडने की और शोक, भय, दुगंच्छा छोडने की भावना की जाती है जिससे चारित्र निर्मल बनता है । तत् पश्चात आध्यात्मिक पतन कराने वाले अशुभ अध्यवसायों की प्रधानता वाली कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या त्यागी जाती है । फिर साधना में विक्षेप डालकर आध्यात्मिक पतन करने वाले ऋद्धि गारव, रस गारव, साता गारव को त्यजा जाता है । पश्चात धर्म कर्तव्य के अमूल्य फल का नाश करने वाले माया शल्य, नियाण शल्य, मिथ्यादंसण शल्य को छोडने की, त्यागने की भावना की जाती है ।

अंत में अनुक्रम से राग, द्वेष के स्वरुप क्रोध, मान, माया और लोभ को त्यागने की भावना कर सामायिक की साधना को सफल बनाने वाली मैत्री भावना का हो सके उतना अमल करने के लिये छः काय जीव की

विराधना हुई हो उसका मिथ्या दृष्कृत किया जाता है ।

इस तरह आत्मोपयोगी कर्तव्यों में अनेक बार उपयोग में आते पचास बोलों में जीव उपयोग रखकर उस प्रकार बरते तो जल्दी आत्मा को परमात्मा बना सके ।

सुगुरु वांदणा विधि

इस प्रकार उत्तरासंग अथवा मुहपत्ती पडिलेहण करने के पश्चात एक खमासमण देकर खडे होकर गुरु वंदन का आदेश मांगना : **इच्छा कारेण संदिस्सह भगवन् । देवसिक । राइ वांदणा दऊंजी ?** गुरु कहें **''देह''** तब शिष्य **''इच्छं''** कह कर दो वांदणे दे ।

वांदणा देते समय सत्रह (संडासा) प्रमार्जना

वांदणा देते समय सत्तर (संडासा) प्रमार्जना इस प्रकार की जाती है - ''निस्सिहि'' बोल कर अवग्रह में आने से पहले तीन बार मुहपत्ती, चरवला या ओघे से भूमि प्रमार्जना ३) दांये पैर का कमर से नीचे का एडी पर्यंत सभी भाग ४) पीछे कमर नीचे का मध्य भाग ५) बांये पैर का पिछला कमर के नीचे एडी पर्यंत सभी भाग ६) उसी तरह दांया पैर ७) मध्य भाग ८) बांया पैर इन तीनों की कमर से पैर तक आगे का भाग भी प्रमार्जना । ९) फिर उकडुं (उभडक) आसन में नीचें बैठ कर दांये हाथ में मुहपत्ती लेकर उससे ललाट की, दांयी ओर से प्रमार्जना करते हुए पूरा ललाट, पूरा बांया हाथ नीचे कोहनी तक १०) उसी तरह बांये हाथ में महपत्ती लेकर बांयी ओर से प्रमार्जते हुए पूरा ललाट, पूरा दायां हाथ और नीचे कोहनी पर्यत चरवले (ओघे) की दांडी के साथ ११) फिर चरवले के गुच्छे उपर, व जमीन उपर अथवा बांये घुटने पर तीन बार १४) उठते समय तीन बार अवग्रह से बाहर निकलते कटासना चरवला या ओघा इससे पूंजना । इस तरह सत्रह प्रमार्जना करना । खमासमण देते समय भी इस तरह सत्रह प्रमार्जना करना ।

सुगुरु वांदणा सूत्र में ''अहो कायं काय जत्ताभे जवणि ज्जं चभे'' ये शब्द नीचे की विधि से बोले जाते है -

अ - (नीचे स्थापित उत्तरासंग) के छोर या मुहपत्ती को दो हाथों से स्पर्श करके बोला जाता है ।
हो - ललाट को दो हाथों से स्पर्श करके बोला जाता है ।
का - मुहपत्ती को दो हाथों से स्पर्श करके बोला जाता है ।
यं - ललाट को दो हाथों से स्पर्श करके बोला जाता है ।
का - मुहपत्ती को दो हाथों से स्पर्श करके बोला जाता है ।
य - ललाट को दो हाथों से स्पर्श करके बोला जाता है ।
ज - गुरुचरण बुद्धि से मुहपत्ती को दो हाथों से स्पर्श करते अनुदात्त स्वर में बोला जाता है ।
त्ता - महपत्ती और ललाट के बीच दो हाथ चित्त रख कर स्वरित स्वर में बोला जाता है ।
भे - ललाट को दो हाथों से स्पर्श करते उदात्त स्वर में बोला जाता है ।
ज - मुहपत्ती को दो हाथों से स्पर्श करते अनुदात्त स्वर में बोला जाता है ।
व - मुहपत्ती और ललाट के बीच दो हाथ चित रखकर स्वरित स्वर में बोला जाता है ।
णि - ललाट को दो हाथों से स्पर्श करते उदात्त स्वर में बोला जाता है ।
ज्जं - मुहपत्ती को हाथों से स्पर्श करते अनुदात्त स्वर में बोला जाता है ।
च - दो हाथ मध्य में चित रखकर स्वरित स्वर में बोला जाता है ।

भे - दो हाथ ललाट को स्पर्श करते उदात्त स्वर में बोला जाता है ।

सुगुरु वंदणा सूत्र

इच्छामि खमासमणो । वंदिऊं जावणिज्जाए निसीहिआओ १
अणुजाणह, मे मिऊग्गहं २
निसीहि अ-हो-का-यं-का-य-संफासं खमाणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं
बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो ? ३
जत्ता भे ? ४
जवणि ज्जं च भे ?
खामेमि खमासमणो ! देवसिअं वइक्कमं ५
आवस्सिआओ पडिक्कमामि ६

खमासमणाणं देवसिआओ आसायणाओ, तित्तीसन्नराये, जं कि चि मिच्छाओ, मणदुक्कडाओ, वय दुक्कडाओ, काय दुक्कडाओ, कोहाओ, माणाओ मायाओ, लोभाओ, सव्वकालिआओ, सव्वमिच्छोवयाराये, सव्वधम्माईक्कमणाओ, आसायणाओ ! जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स खमासमणो ! पडिकमामि निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि !

इच्छामि - मैं चाहता हूँ
खमासमणो - हे क्षमाश्रमण
वंदिऊं - वंदन करना
जावणिज्जाओ - यथाशक्ति
निसिहिआओ - पापरहित रुप
अणुजाणह - आज्ञा दिजिए
मे - मुझे
मिऊग्गहं - मित अवग्रह (साढे तीन हाथ प्रमाणवाले क्षेत्र में प्रवेश करने की)
निसीही - पापयुक्त कायों का निषेध करता हूँ
अहोकायं - आपकी नीचे की कायारुप चरण को
कायसंकासं - शरीर से स्पर्श करने
खमणिज्जो - वह क्षमा करना
भे - हे भगवंत
किलामो - खेद, तकलीफ हुई हो वह
अप्पकिलंताणं - थोडी थकान वाले ऐसे आपको
बहुसुभेण - खूब शुभ भाव में
भे - हे, भगवंत
दिवसो - दिन
आसायणाओ - आशातना को
तित्तीसन्नयराओ - तैंतीस आशातना में से
जंकिंचि - जो कुछ
मिच्छाओ - मिथ्याभावरुप आशातनाकरके
मणदुक्कडाओ - मन संबंधी पाप रुप आशातना करके
वयदुक्कडाओ - वचन संबंधी पापरुप आशातना करके
कायदुक्कडाओ - शरीर संबंधी पापरुप आशातना करके
कोहाओ - क्रोध रुप आशातना से
माणाओ - मान रुप आशातना से
मायाओ - मायारुप आशातना से
लोभाओ - लोभरुप आशातना से
सव्व कालिआओ - सर्व काल संबंधी
सव्व-मिच्छोवयाराओ - सर्व मिथ्या उपचार कूडकपट रुप आशातना करके
सव्व धम्माइक्कमणाओ - सर्व धर्म (आठ प्रवचन माता रुप)

वइक्कंतो - व्यतीत हुआ
जत्ता - तप, संयमरुप यात्रा
भे - भगवंतु
जवणिज्जंच - पाँच इन्द्रिय और मन नोइन्द्रिय से पीडीत नहीं होता ऐसा शरीर
भे - आपका
खामेमि - खमाता हूँ
खमासमणो - हे, क्षमाश्रमण
देवसिअं - दिन संबंधी
वइक्कमं - अपराध को
आवस्सिआओ - आवश्यक क्रिया करते समय लगे हुए दोष को
पडिक्कमामि - मैं पडिक्कमता हूँ / पाप से पीछे हटता हूँ
खमासमणाणं - क्षमाश्रमण संबंधी
देवसिआओ - दिन में हुई
आसायणाओ - आशातना करके
जो - जो
मे - मैनें
देवसिओ - दिन संबंधी
अइआरो - अतिचार / दोष
कओ - किये हों
तस्स - वह
खमासमणो - हे क्षमाश्रमण
पडिक्कमामि - मैं पडिक्कमता हूँ
निंदामि - निंदा करता हूँ / मन से पश्चाताप करता हूँ
गरिहामि - गुरु की साक्षी में प्रगट रुप से निंदा करता हूँ
अप्पाणं - आत्मा को / शरीर के व्यापारको
वोसिरामि - वोसिराता हूँ / त्याग करता हूँ.

शब्दार्थ

गाथार्थ - हे क्षमाश्रमण ! आपको मैं शक्ति अनुसार पाप रहित पूर्वक वंदन करना चाहता हूँ....१ मित अवग्रह (साढे तीन हाथ प्रमाण जगह में) मुझे प्रवेश करने की आज्ञा दिजिए...२ गुरुवंदन के अलावा अन्य क्रिया निषेधकर, आपकी नीचे की कायारुप चरण को मेरे हाथ और मस्तक छूने से, हे भगवंत आपको किसी भी प्रकार की बाधा पीडा हुई हो तो क्षमा करना । थोडी थकान वाले, हे भगवंत! बहुत शुभ भाव में आपका दिन बीता है ? हे भगवंत ! आपकी तप, संयम, नियम और स्वाध्यायरुप यात्रा बाधापीडा रहित चल रही है ....४ आपका शरीर पांच इंद्रिय और मन नोइंद्रिय से पिडीत नहीं ऐसा है ?....५ हे क्षमाश्रमण ! दिन संबंधी मेरे अपराध को मैं खमाता हूँ....६

आवश्यक क्रिया करते लगे दोष से मैं पीछे हटता हूँ । आप क्षमाश्रमण की दिन संबंधी तैंतीस आशातना में से कोई भी आशातना के द्वारा मिथ्याभावरुप आशातना करके, मन संबंधी पापरुप आशातना करके, क्रोधरुप आशातना करके, मानरुप आशातना करके, मायारुप आशातना करके, लोभरुप आशातना करके, सर्वकाल संबंधी सर्व मिथ्या कथन कूडकपट रुप आशातना करके, सर्व धर्म (अष्टप्रवचन माता रुप) करनी की उल्लंघना रुप आशातना करके, दिन संबंधी मैंने जो अतिचार, दोष किया हो, उस संबंधी हे क्षमाश्रमण ! मैं प्रतिक्रमण (पडिक्कमण) करता हूँ । मन से पश्चाताप करता हूँ । गुरु की साक्षी में प्रगटरुप से निंदा करता हूँ । और मेरी आत्मा को, शरीर व्यापार को वोसिराता हूँ । त्याग करता हूँ ।

(**भावार्थ -** इस सूत्र से गुरु को बारह आवर्त पूर्वक वंदन किया जाता है और दिन संबंधी (रात्रि

श्रावक किसे कहें ?

(श्रावक के २१ गुण)

१६. विशेषज्ञ

पुण्य जागे, पाप भागे और मानव भव मिल गया, पुण्यानुबंधी पुण्य का उदय हुआ । पुण्यवंत, जयवंत जिनशासन को प्राप्त करने का सद्भाग्य मिला, ऐसा प्राप्त हुआ विरल मौका निष्फल न जाय इसलिये पुरुषार्थ करना कर्तव्य बनता है । पाये हुए जिनशासन को सफल बनाने के लिये गुणोंका स्वामी बनना अनिवार्य है । श्रावक योग्य गुणों का विचार करते हुए हमने पंद्रह गुणोंका विचार कर लिया, अब प्रस्तुत है सोलहँवा गुण -

वत्थूणं गुणदोसे लक्खेई अपक्खवाय भावेण
पाअेण विसेसन्न् उत्तम धम्मारिहो तेण...२३

विशेषज्ञ पुरुष अपक्षपात पने से वस्तुओं के गुणदोष जान सकते है, अतः प्रायः वैसा पुरुष ही उत्तम धर्म के योग्य है....२३

हे साधक ! यदि तुझे उत्तम धर्म की आराधना करना है तो तुझे विशेषज्ञता का स्वामी बनना पडेगा ।

आँख मिली तो देख सकते है....

बुद्धि मिली तो विचार कर सकते है....

जीभ मिली तो बोल सकते है .....

इनके साथ यदि विशेषज्ञता जुड जाय तो आत्मा सरलता से भवसागर तिर जाय । ऐसी कौनसी विशेषता है, विशेषज्ञता में यह बताते हुए कहते हैं ..

विशेषज्ञ तटस्थ दृष्टिवाला होता है, उसके पास पक्षपाती दृष्टि नहीं होती । जो वस्तु जैसी होती है वैसी ही जान सकते है । उसी तरह विशेषज्ञ वस्तु के गुण और दोष दोनों जानने वाला होता है ।

वर्षारंभ की प्रभातवेला में शालीभद्र की ऋद्धि मांगते है, मम्मण सेठ की नहीं , क्यों ?

शालीभद्र के पास विशेषज्ञता थी, वे संपत्ति के गुण और दोष दोनों को जानते थे, अतः संपत्ति भोगी भी और समय आने पर संपत्ति का त्याग करना भी जाना ।

मम्मण सेठ के पास संपत्ति थी पर विशेषज्ञता का अभाव था अतः संपत्ति प्राप्त करना जाना परंतु उसको भोग भी न सके और त्याग भी न सके ।

संपत्ति प्राप्त करने के लिये विशेषज्ञता की आवश्यकता नहीं होती पर उसका सदुपयोग करने के लिये विशेषज्ञता अनिवार्य है ।

जैसी बात संपत्ति की वैसी ही बात सत्ता और बुद्धि की एवं प्रत्येक इंद्रिय के विषयों के बारे में जानना ।

पुण्य के उदय से सत्ता मिल जाती है पर बादमें यदि जीव विशेषज्ञता का स्वामी बन सकता है तो सत्ता के सदुपयोग द्वारा आलोक-परलोक दोनों सुधार सकता है । पर विशेषज्ञता का अभाव उसे नर्क में भेजने में समर्थ होता है ।

छह खंड के अधिपति बनने के बाद भरत महाराजा और सनत् चक्रवर्ती जैसे विशेषज्ञता के बल पर भवसागर तिर गये जबकि छह खंड के अधिपति बनकर भी विशेषज्ञता के अभाव से ब्रम्हदत्त चक्रवर्ती एवं सुभूम चक्रवर्ती जीवन हार गये ।

अभयकुमार के पास बुद्धि थी, बिरबल के पास भी बुद्धि थी, फिर भी हम अभयकुमार की बुद्धि की याचना करते है, बिरबल जैसी क्यों नहीं मांगते ?

आजके मनुष्य के पास बुद्धि कहाँ कम है ? आज का बालक भी तीव्र बुद्धि का धनी है, पर उसकी बुद्धि केवल वर्तमान जीवन के भौतिक सुख ही देख सकती है, उसमें कहीं भी विशेषज्ञता के दर्शन नहीं होते ।

भोगों के पीछे आनेवाले रोग नहीं दिखाई देते ।

सत्ता और संपत्ति की क्षणभंगुरता उन्हें दिखाई नहीं देती । विषयों के विष भरे हुए जाम में मौत के दर्शन नहीं होते, कषायों के कटु घूँट से मिलते विपरित विपाक दिखाई नहीं देते ।

जबतक पक्षपाती दृष्टि होगी तबतक यह सब शक्य नहीं है । सामान्य जीवन में भी दिखाई देता है कि, किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष पर राग उत्पन्न होता है, तब हमे उसमें केवल गुण ही दिखाई देते है, कभी भी दोषों का दर्शन नहीं होता ।

ऐसी पक्षपाती दृष्टि के कारण ही हम अनादि कालसे संसार में भटक रहे है, भ्रमण कर रहे हैं । इस भवभ्रमण का अंत लाना हो तो पक्षपाती दृष्टि छोडकर अपना जीवन विशेषज्ञता से जोड देना चाहिये ।

अनादि से हमें जड के गुण देखने की और चेतन के दोष देखने की आदत लगी हुई है । आदत को घूमाकर अब चेतन के गुण देखने की और जड के दोष देखने की आदत को विकसित करना पडेगा । विशेषज्ञा के अभाव के कारण ही, जीव को असार संसार सारभूत महेसूस होता है । संसार के रंगराग और भोगविलासों की असारता और निरर्थकता समझाने के लिये पूर्वाचार्यों ने मधुबिन्दु का सुंदर दृष्टांत बताया है, वह विशेषज्ञता से जानना चाहिये ।

एक भयानक जंगल है....

एक मुसाफिर जंगल में से जा रहा है....

अचानक उस के पीछे जंगली हाथी पडा । यदि मुसाफिर हाथ में आये तो उसे मसल दूँ, मुसाफिर जीव बचाने के लिये जी जान से दौडने लगा, दौडते दौडते उसके दृष्टिमें विशाल बरगद का पेड आया । उसकी लम्बी जटाएं आयी । हाथी से बचने के लिये उन्हें पकडकर वह अध्दर लटकने लगा । उपर लटकते हुए उसने नीचे नजर की तो बडा कुँआ दिखाई दिया । कुअें में बडे बडे चार अजगर दिखे । वे मुँह खोलकर उसे ग्रास बनाने के लिये तत्पर दिखाई दे रहे थे ।

मुसाफिर ने उपर नजर डाली तो सफेद-काले चुहे पेड के जटाओं को काटते हुए, कुतरते दिखाई दिये । तबतक हाथी भी पहूँच गया, वह जोर जोर से सूँढ से बरगद हिलाने लगा । पेड के हिलने से टहनी पर रहे हुए मधुमख्खियों के छत्ते से मधुबिंदु मुसाफिर के मुख में पडने लगे । उन बिंदुओं के स्वाद में वह इतना लिप्त हो गया, मोहवश हो गया की वह सब दुःख भूल गया, अपनी खुद की भयानक स्थिति को भी भूल गया ।

इतने में एक देव अपने देवविमान में उस मार्ग से जा रहा था । मुसाफिर की भयानक परिस्थिति देख उसे दया आयी । मुसाफिर को बचाने के लिये उसके पास आकर पेड को छोडकर विमान में बैठ जाने को कहा, परंतु मधुबिंदू के स्वाद में पागल बने हुए मुसाफिर ने देव की बिनती नहीं स्वीकारी अंतः में टहनी टूट गयी और कुअे मे गिरी, मसाफिर भी अजगर का ग्रास बन गया ।

आईये, विशेषज्ञता से पूरे रुपक को समझने का प्रयास करें ।

भयानक जंगल जैसा यह संसार है, मुसाफिर याने हमारी आत्मा है, क्रोध, मान,माया, लोभ रुप चार अजगर है, जटाअें हमारा आयुष्य है, काला-सफेद चूहा यह कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष है, देव विमान में बैठे देव ये उपकारी गुरु भगवंत है ।

जो जीव विशेषज्ञता से असार संसार के सच्चे स्वरुप को पहचान लेता है, समझ लेता है, वह सुदेव, सुगुरु और सुधर्म का शरण स्वीकार कर भवसागर तिर जाता है, जिनके पास विशेषज्ञता का अभाव है, वे जीव मधुबिंदू जैसे विषयसुखों में ललचा कर अनंत संसार में दुःख और दुर्गति को भोगनेवाले बनते है ।

अनादि की हमारी भूल को विशेषज्ञता के गुण द्वारा सुधारने में कटिबद्ध बनें, मिले हुए श्रावक कुल को उज्वल बना आत्मकल्याण के पथ पर प्रयाण करे ।

श्रावक का जीवन बन जाय गुणों का धाम, इसलिये पूर्वाचार्यों ने इक्कीस गुण बताये । हमने अबतक सोलह गुणों को समझने का यथाशक्ति प्रयत्न किया, अब आगे चलकर श्रावक के सत्रँहवे गुण को समझने का प्रयत्न करें ।

१७. वृद्धानुसारिता

श्रावक का सत्रहँवा गुण वृद्धानुसारिता को प्रकट करने की बात करता है ....

वुढो परियण बुद्धि पावायारे पवत्तई नेव,
वुढाणुगो वि अेवं संसग्गकिया गुणा जेण....२४

वृद्ध पुरुष पक्व बुद्धिवाला होने से पापाचार में प्रवर्तता ही नहीं । उसी तरह उसके अनुगामी भी पापाचार में प्रवर्तमान नहीं होते, क्योंकि संग जैसा वैसा रंग आता है ।

यहाँ पर श्रावक बनने के लिये वृद्ध पुरुषों को अनुसरने की बात कही है, हम अब पहले देखेंगे की वृद्ध किसे कहें ?

जिसकी उमर बडी है, बाल सफेद हो गये है, दांत गिर गये है, हाथपैर कांप रहे है, कम्मर से झुक गये हैं, हम ऐसों को ही वृद्ध मानते हैं ।

परंतु ज्ञानी महात्माओं की दृष्टि शब्दों का अर्थ करने में बहुत सूक्ष्म,तीक्ष्ण, विशाल और गहन होती है । ज्ञानी पुरुषोंने वयोवृद्ध के साथ साथ ज्ञानवृद्ध, संयमवृद्ध, तपवृद्ध, ध्यानवृद्ध ऐसे अनेक वृद्धों की बात बताई है । यहाँ पर वृद्धों की बात बताई है, उसमें स्पष्ट बताया है कि, जो परिपक्व बुद्धि के स्वामी है, जो पापाचार में कभी भी प्रवर्तमान होते नहीं, ऐसे वृद्धों का संग करने में आये, उनके बताये हुए और आचरण किये हुए मार्ग का अनुसरण करने में आये तो जीवन में धर्म को पाकर पचाने की योग्यता प्राप्त होती है ।

जीवन में जब परिपक्वता न हो, बुद्धिकी पक्वता नहीं होती तब जीव गंभीरता पूर्वक विचार किये बिना, परिणाम का विचार किये बिना जल्दबाजी में निर्णय ले लेते है और अंततः पछताने की बारी आती है ।

वृद्धों के पास जीवन में प्राप्त किया हुआ अनुभव का खजाना होता है । अतः वे पाप से दुःख, अपयश और दुःख प्राप्ति को जाननेवाले होते हैं । इसीलिये वे पापप्रवृत्ति से निवृत्त होते है । पुण्य से सुख, यशकीर्ति और सद्गति को जानकर सदाचार युक्त मार्ग में प्रवृत्ति करनेवाले होते है ।

जो लोग ऐसे वृद्धों का अनुसरण करने वाले होते है, वे स्वयं पाप कार्यों से दुराचार से दूर हो जाते है और सन्मार्ग के सच्चे साधक, आराधक बन आत्मकल्याण साध्य करने वाले होते है ।

हम किस के संग में रंगे है ? इस संग का रंग हमें कहाँ ले जायेगा ? उठायेगा या डूबायेगा ? यह सोचने का समय आ गया है ।

****

धोलका नगरी,
विसलदेव राजा,
सिंह थे विसलदेव के मामा,

सिंह एकबार रास्ते से जा रहे थे, उपाश्रय के पाससे निकलतेही मस्तक पर धूल पडी, उपर देखने पर बालसाधु दिखाई दिये । क्रोध में पागल बने सिंह ने उपाश्रय में जाकर बालसाधु को तमाचा ठोक दिया । उपाश्रय में हाजिर श्रावक, श्राविका जलभून गये पर कोई कुछ बोले नहीं ।

थोडे समय के बाद वस्तुपाल मंत्री गुरुवंदन करने आये, गुरुभगवंत कुछ न बोले पर श्रावक, श्राविकाओं ने मंत्रीश्वर को घटी हुई घटना का वृतांत बताया । वस्तुपाल इस बात को सहन नहीं कर सके, उन्होंने कहा ''त्यागी को तमाचा यह मंत्रीपद के सामने बडा आव्हान है । जाओ जो मर्द है वह जाये और जिस हाथ से मुनि को तमाचा मारा उसकी पाँचो की पाँचो उंगलियाँ काट डाले ।''

वस्तुपाल मंत्रीके आव्हान को झेलकर के धर्मप्रेमी युवान सिंह के मकान पर गये और सिंह की उंगलियाँ काट डाली ।

सिंह पहुँचे राजा विसलदेव के पास । राजा को बात बतायी । वस्तुपाल को कैद करने को कहा । मामा सिंह का वचन सुनकर वस्तुपाल को कैद करने अश्वारोही को भेजा ।

वस्तुपाल की हवेली जैन, अजैनों से, आगेवानों से भरी हुई थी । अश्वारोही को बीच में ही रोककर उन्होंने कहा ''जा तेरे राजा को संदेशा दो की, मामा के

भरोसे पर और उसके कहने पर कदम मत उठाना । किसी समझदार, बुद्धिमान की सलाह लेकर राज करना नहीं तो परिणाम भयंकर होगा ।''

अश्वारोही ने राजा विसलदेव को संदेश दिया । राजा शांत होने के बजाय और क्रुध्द हो गये । कदाग्रह के वश होकर उन्होंने सेनापति और लष्कर को मंत्रीश्वर को कैद करने की आज्ञा दी ।

तभी विलक्षण अनुभवी वृद्ध राजपुरोहित आये । उन्होंने राजा को बहुत समझाकर आज्ञा वापिस खिंचवाई ।

सेनापति और सैन्य अपनी तलवार राजा को सौंपकर नोकरी छोडने को तैयार हो गये । लोकप्रिय और प्रजावत्सल मंत्रीश्वर का बाल भी बांका करने की किसी की तैयारी न थी ।

राजपुरोहित ने विसलदेव से कहा ''राजन् ! कैसा अविचारी कदम उठाया, वस्तुपाल को तुम्हारे दादाने कोहिनूर हीरे की उपमा दी है । तुम्हारे पिता वीरधवल ने कभी भी वस्तुपाल की अवज्ञा की नहीं, उसे तुम पकडकर जेल में बंद करने की सोच रहे हों ? कुछ विचार करो नहीं तो परिस्थिति हाथ से निकल जायेगी, काम बिगड जायेगा ।''

राजपुरोहित की बात पर सोचकर परिस्थिति संभालने के लिये राजा ने महल के गवाक्ष में से प्रजाजनों को संबोधित करते हुए कहा ''प्रिय प्रजाजनो ! तुम सब निर्भय बनो, तुम्हें या तुम्हारे धर्म को मेरे होते हुए जरा भी आँच नहीं आने दूंगा, मेरे मामा सिंह ने जल्दबाजी कर दी है, आवेश में आकर गंभीर भूल कर दी है । उसकी सजा वे भुगत रहे हैं । मैं उनकी खातिर कभी भी मेरी प्रजा को दुःखी नहीं होने दूंगा ।

प्रजाजनों को राजा की बात सुन संतोष हुआ, सब ने राजा विसलदेव का जयजयकार किया और विदा हुए ।

यदि विसलदेव राजा ने पहले से ही विचारपूर्वक कदम उठाया होता तो, योग्य व्यक्ति की सलाह ली होती तो ऐसी भयंकर परिस्थिति उत्पन्न न होती ।

हमारे जीवन में जब ऐसी घटनाअें घटती है, तब आत्मनिरीक्षण करना चाहिये, की मेरी भूल कहाँ होती है । प्रायः क्लेश और तंटे, बखेडे के पीछे किसी की गलत सलाह या गलत मार्गदर्शन होता है । हमारे जीवन में ऐसा कुछ न बने इसके लिये सदैव समझदार, सयाने, गंभीर और परिपक्व बुद्धिवाले सदाचारी वक्ति की योग्य सलाह लेनी चाहिये ।

आज दुनिया में दो को झगडाकर तमाशा देखने में आनंद आता है । पर हमने तटस्थ बनकर योग्य व्यक्ति की योग्य सलाह पर विचार कर अंगीकार करें तो प्रायः ऐसा मौका किसी को मिलता नहीं है ।

बृहद् शांति में इसीलिये ''महाजनो येन गता स पंथा'' ऐसा कहा गया है ।

मानव भव, वीतराग का शासन प्राप्त होने के बाद महापुरुषों ने जिस मार्ग से प्रयाण किया है , उस मार्ग का अनुसरण करने के लिये हम कटिबद्ध बने । प्रमाद का त्याग कर,सत् पंथ के रागी बनकर महाजनों के बताये हुए मार्ग के सफल यात्री बनने के लिये वृद्धानुसारिता के गुण को जीवन में विकसित करने के लिये उद्यमवंत बने ।

मानव भव जिनशासन पाने के बाद श्रावक बनने के लिये सही पुरुषार्थ करना चाहिये । यह पुरुषार्थ केवल बाह्य क्रियाकांड तक ही मर्यादित नहीं है अपितु जीवन में गुणों के संवर्धन की बात है । हम श्रावक बनने के लिए आवश्यक गुणों की विचारणा करते हैं ।

इन गुणों पर विचार कर, चिंतन मनन कर उन्हें आत्मसात करने का प्रयास आरंभ करना है । जिनशासन में व्यक्ति पूजन का नहीं पर गुण पूजा का महत्व है । आईये और नये गुणों को प्रवेश देकर आगे बढें ।

१८. विनय

विणओ सव्वगुणाणं मूलं सन्नाणदंसाणाई णं,
सुक् खस्सय ते मूलं तेण विणओ इह पसत्थो ..२५

विनय ही सम्यग्ज्ञान, दर्शन आदि सभी गुणों का मूल है, और वही गुण सुख का मूल है, अतः यहाँ विनीत को प्रशस्त कहा है ।

जिनशासन में आराधना की शुरआत नवकार महामंत्र से होती है, और नवकार महामंत्र का प्रथम शब्द ही हम सब को झुकने की बात समझाता है । जिसे झुकना नहीं आता उसे नवकार नहीं आता और जिसे नवकार नहीं आता उसे जैन नहीं कहा जाता ।

नवकार महामंत्र ही जैन श्रावक की प्राथमिक पहचान है । चलो हम हमारे जीवन में ''विनय'' का स्थान कहां है, क्या है इसे जानने का प्रयत्न करें ।

घर में वडिलों का माता-पिता का विनय, शाला में, स्कूल, कॉलेजों में ज्ञानदाता गुरुजनों का विनय, व्यवहार में कामधंधे पर लगाने वाले का, पैसे कमाने की न्यायपूर्ण हितशिक्षा देने वाले स्वामी का विनय ।

उपाश्रय में धर्म का मर्म समझाने वाले गुरुभगवंतों का विनय, देहरासर में अनंत उपकारी अरिहंत परमात्मा का विनय, जिसे प्राप्त हुए मानवभव को सफल बनाना हो, आत्मकल्याण साधना हो उसे इन सब स्थानों में विनय का पालन अवश्य करना चाहिये । विनय के बिना उपकारी महात्माओं के लिये हृदय में बहुमान जागृत नहीं होता, बहुमान उत्पन्न नहीं होता तो सन्मान और सत्कार में भी कमतरता आ जाती है, जीवन में उपकारियों के प्रति, गुणीजनों के प्रति विनय बहुमान न रहा तो आत्मविकास कैसे संभवित बनेगा ?

विनय ज्ञान का मूल है,
विनय धर्म का मूल है,
विनय जीवन विकास का मूल है

मगध सम्राट श्रेणिक, चंडाल के पास से विद्या ले रहे थे । दिन पर दिन बितते गये परंतु श्रेणिक महाराजा को विद्या आत्मसात नहीं हुई । एक दिन अभयकुमार ने देखा, महाराजा सिंहासन पर आसीन है, चंडाल नीचे बैठकर पाठ पढा रहा है । अभयकुमार समझ गये कि श्रेणिक महाराजा को विद्या क्यों नहीं आ रही ।

अभयकुमार श्रेणिक महाराजा के चरणों में नमस्कार कर बोले '' पिताजी ! अविनय होता हो तो क्षमा करना पर इस रीती से पढोगे तो विद्या कभी भी नहीं आयेगी । विद्या आत्मसात करनी हो तो विद्यागुरु का विनय करना होगा । आप राजा हो यह भूलना पडेगा । सामने चांडाल पढा रहा है, यह भी भूलना पडेगा । मै शिष्य हूँ और सामने वाला विद्यादाता गुरु है, यह मानकर चलना होगा । आपको नीचे आसन पर बैठना होगा, विद्यागुरु को उच्चासन पर विराजमान करना होगा, गुरु के पास सविनय मंत्र स्वीकार कर आराधना करनी होगी, तभी विद्या आयेगी । उसके बिना विद्या की प्राप्ति संभवित नहीं । विद्या विनय से शोभा देती है और विनय से ही आत्मसात होती है ।''

अभयकुमार की बात का श्रेणिक महाराजा ने स्वीकार किया और जैसे चमत्कार हो गया, मगध सम्राट को विद्याप्राप्ति हो गयी । हमें भी ज्ञान साधना या धर्मसाधना करनी होगी तो विनय गुणकी आराधना सर्वप्रथम करनी होगी ।

विनय के गुण में वैरी को भी वश करने की ताकत है । परायों को अपना बनाने की शक्ति है । इसीलिये विनय को वशीकरण कहते है । एक बार जो अनुभव लें, प्रयोग करे तो विनय का जादू अनुभूत होगा ।

परमात्मा की भक्ति करने, भगवान के जन्मोत्सव को मनाने को तैयार हुए सौधर्मेन्द्र स्वयं वृषभ के पांच रुप धारण कर अभिषेक करता है । क्यों ? वे समझते है कि दुनिया के लिये मैं देव हूँ, देवों के लिये मैं इन्द्र हूँ पर प्रभु परमात्मा के सामने मैं सदा ही सेवक हूं । खुद की लघुता बताने के लिये ही इन्द्र वृषभ का रुप धारण करता है ।

हम सत्ता से चाहे उतने उंचे आसन पर आसीन हो, हम संपत्ति से चाहे उतने समृद्धि वाले हों, परंतु देव,गुरु, माता, स्वामी और उपकारी के सामने सदा छोटे है, सेवक है, दास है ।

सेवक बनते जिसे नहीं आता वह कभी भी स्वामी नहीं बन सकता । चंदनबाला साध्वी शिरोमणि थी, प्रभु महावीर स्वामी के मुख्य साध्वीजी थे, मृगावती उनकी शिष्या थी । उपाश्रय में लौटने को देर हुई तो गुरु चंदनबाला ने टकोर की '' तुम्हारी जैसी कुलीन साध्वीजी ने ऐसा विलंब करना योग्य नहीं है ।''

तेजी को टकोर काफी होती है । इस न्याय से मृगावती विचार करने लगी ''मैं कैसी हूँ ? मैंने गुरु भगवंत को संताप पहुंचाया है, उनकी साधना में अवरोध खडा किया है ।'' इस तरह के पश्चाताप की धारा में कर्म मल धोकर आत्मा उज्वल हो गयी, घाति कर्मों का नाश हुआ और केवलज्ञान की ज्योत झिलमिला उठी ।

रात को काले सांप को मार्ग देने अपनी गुरुणी चंदनबाला का हाथ उठाया, गुरुणी ने जागृत होकर पूछा '' काली रात में काला सांप कैसे दिखा ? ''

ऐसा पुछने पर मृगावतीजी ने कहा ''आपके पसाय (कृपा) से '', ''क्या ज्ञान हो गया ?'' चदनबाला ने पूछा । जवाब देते हुए मृगावतीजी बोली ''आपके प्रभाव से ।''

शिष्या को केवलज्ञान , गुरु छद्मस्थ, फिर भी कैसा अद्‌भूत विनय ।

अपने जीवन को जब विनय से भरपूर बनायेंगे तब सभी प्रकार की सिद्धियाँ चरणों में लेटेंगी, विनय नहीं होगा तो सभी सिद्धियाँ अंतर्ध्यान हो जायेगी । हम हार जायेंगे ।

सही श्रावक जीवन को मनाने के लिये जीवन के हरेक क्षेत्र में विनय गुण को प्रवेश देना ही पडेगा । काया में विनय होगा तो देव,गुरु को उपकारी माता,पिता, जेष्ठ जनों को देखकर स्थान से खडे हो जायेंगे । हाथ जुड जायेंगे, उनके सामने चार कदम बढेंगे, उन्हें बैठने को योग्य आसन देंगे, स्थान देंगे, उनके आसनस्थ होने पर ही नीचे आसन पर बैठेंगे ।

वाणी में विनय रहा तो ''भाषाशुद्धि'' होगी । वाणी में मीठास, नम्रता होगी, बडोंका बहुमान रखकर बात-चीत होगी, कहीं भी उग्रता नहीं होगी, रोष न होगा, कटुता न होगी ।

मन में विनय होगा तो मन शुभ और शुद्ध विचारों से महकता होगा, जहाँ किसी भी जीव के प्रति अशुभ विचार ही न होगा । आराधकों की साधना, आराधना, उपासना देखकर आनंद और अनुमोदना होगी, ज्ञानी और गुणवान जीवों के दर्शन मात्र से हर्ष से पागल बन जाता होगा, उन महात्माओं की बरसती कृपा झेलने अपने जीवन को ज्यादा से ज्यादा विनय पूर्ण बनाते जाता है ।

इस विनय गुण को धंधे में, घरमें, व्यवहार में अभ्यास में, धर्म में, दुकान में, बस में, गाडी में, खाने-पीने में, सब स्थानों में जोड दें तो अवर्णनीय आनंद की अनुभूति हुए बिना नहीं रहेगी ।

जीव-विचार

कितनी विविधता से भरा हुआ यह विश्व है । इस विश्व में रहे हुए जीवों में भी कितनी विविधता है ? इतना ही नहीं पर जीवों की ऊंचाई वगैरह में भी कितनी विचित्रता देखने मिलती है । कहीं जीव की अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी काया है तो कहीं जीव ने पांचसो धनुष्य जितनी काया धारण की हुई है । ऐसी विविधता - विषमता और विचित्रता का परिचय देवाधिदेव के बिना हमें कौन करा सकता है ? विश्व के सच्चे स्वरुप का भान करने वाले उन केवल ज्ञानी भगवंतो को कोटि कोटि वंदना ।

चलिए जीवों के परिचय में हम आगे बढते हैं । आज हम प्रथम तिर्यंच पचेंद्रिय जीवों के शरीर की ऊंचाई (अवगाहना) का विचार करेंगे -

जोयण सहस्समाणा, मच्छा उरगा य गब्भया हुंति ।
धणुहपुहुत्त पक्खिसु, भुयचारी गाउ अ पुहुतं ।।३०।।

अर्थ - गर्भज, मत्स्य ओर गर्भज उरपरिसर्प हजार योजन प्रमाण वाले होते हैं । गर्भज पक्षीओं का शरीर प्रमाण धनुष्य पृथक्त्व और गर्भज भुजपरिसर्प का गाउ पृथक्त्व जानना ।

पृथक्त्व याने दो से नौ ऐसा समझना ।

गर्भज मत्स्य और उरपरिसर्प हजार हजार योजन लंबे हो सकते हैं । हमें ऐसी कल्पना होना भी मुश्किल है । उसी प्रकार पक्षी भी दो से नौ धनुष्य के संभवित है और गर्भज भुजपरिसर्प दो से नौ गाउ के होते हैं । यहाँ भी इस लंबाई को ज्यादा में ज्यादा यानि उत्कृष्ट समझना ।

गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अवगाहना कहने के पश्चात अब संमुर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय का प्रमाण कहते हैं ।

खयरा धणुहपुहुतं भुयगा उरगाय जोयण पुहुतं ।
गाउअ पुहुत्तमित्ता, समुच्छिमा चउप्पया भणिया ।।३१।।

अर्थ : संमुर्च्छिम् पक्षी और भुजपरिसर्प का शरीर प्रमाण धनुष्य पृथकत्व जानना तथा संमुर्च्छिम उरपरिसर्प का शरीरमान योजन पृथकत्व जानना और संमुर्च्छिम चतुष्पद गाउ पृथकत्व प्रमाण वाले कहे गये हैं ।

संमुर्च्छिम तिर्यंचो का भी ऐसा शरीरमान जीव को आश्चर्य उत्पन्न कराने वाला है । अब गर्भज चतुष्पद और मनुष्य का शरीर प्रमाण बताते हैं -

छच्चेव गाउआइं चउप्पया गब्भया मुणेयव्वा ।
कोसतिगं च मणुस्सा, उक्कोस शरीरमाणेणं ।।३२।।

अर्थ - गर्भज चतुष्पदों के शरीर का प्रमाण छः गाउ जानना और गर्भज मनुष्यों की अवगाहना तीन गाउ जानना ।

इस प्रकार से तिर्यंच और मनुष्य की उत्कृष्ट अवगाहना जानना । ऐसे कितने ही शरीर हम सबकी आत्मा ने अनंतबार भोग लीये हैं, धारण कर लिये है । ऐसे शरीरों के द्वारा अनंतबार अनेक प्रकार के खान पान किये हैं, भोग भोगे हैं, कर्म के विपाक और उसके कडवे फल भी भोगे हैं, फिर भी आज यह जीव अज्ञानदशा में ही भटक रहा है । यह सब जानने के पश्चात समझने के पश्चात अज्ञान दशा छोडकर ज्ञानदशा में प्रवेश करना अत्यंत आवश्यक है । जैसे जैसे आज्ञानदशा टले, ज्ञानदशा प्रगटे वैसे वैसे ज्ञान गर्भित वैराग्य की प्राप्ति होती है । ऐसे ज्ञान गर्भित

वैराग्य की प्राप्ति, यही ज्ञान प्राप्ति की सफलता है ।

अब हम देवलोक के देवों के शरीर प्रमाण को जाने -

इसाणंत सूराणं, रयणीओ सत्तहुंति उच्चतं ।
दुग दुग दुग चउगेविज्जणुत्तरे इक्किक्क परिहाणी ।। ३३।।

अर्थ : इशान देवलोक पर्यंत देवों के शरीर की ऊंचाई सात हाथ होती है, ततपश्चात दो, दो और चार देवलोक, नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों के शरीर की ऊंचाई एक एक हाथ कम जानना ।

नरक में जैसे उपर उपर जायें वैसे ऊंचाई आधी आधी होती जाती है, वैसे यहाँ देवलोक में भी जैसे जैसे उपर जांए वैसे ऊंचाई एक एक हाथ कम होती जाती है । देवलोक में शरीरमान की स्पष्ट विगत निम्नानुसार है -

देव	शरीर प्रमाण
भवनपति	- ७ हाथ
व्यंतर	- ७ हाथ
ज्योतिष	- ७ हाथ
सौधर्म-इशानदेव	- ७ हाथ
सनत्कुमार - माहेन्द्रदेव	- ६ हाथ
ब्रम्ह - लांतक	- ५ हाथ
शुक्र - सहस्त्रार	- ४ हाथ
आनत - प्राणत	- ३ हाथ
आरण - अच्युत	- ३ हाथ
नवग्रैवेयक	- २ हाथ
पांच अनुत्तर	- १ हाथ

इस तरह देवों के शरीर की ज्यादा में ज्यादा ऊंचाई सात हाथ की होती है, जो देवों की उत्कृष्ट अवगाहना कही जाती है और देवों की कम से कम ऊंचाई एक हाथ की होती है, जो देवों की जघन्य अवगाहना कहलाती है ।

यहाँ देवो के शरीर की ऊंचाई की बात बताई है, वह उनके मूल शरीर की बात है । देव स्वंय की आयुष्य की समाप्ति तक इस मूल शरीर को धारण करते हैं, इससे वह भवधारणीय कहलाता है ।

भवधारणीय शरीर से अलग, विविध प्रकार की क्रिया ओर आकृति को बनाने वाला जो शरीर वह उत्तर वैक्रिय शरीर कहलाता है । यह उत्तर वैक्रिय शरीर एक या अनेक बना सकते हैं , नहीं चाहिये तब संहर सकते हैं । ऐसे उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना उत्कृष्य से एक लाख योजन और दोनों शरीर के लिये जघन्य अवगाहना अंगुल का संख्यातमा भाग जानना ।

यहाँ विविध जीवों की अवगाहना अथवा शरीरमान द्वार की पूर्णाहूति होती है ।

यहाँ विविध जीवों की अवगाहना अथवा शरीरमान द्वार जानने के पश्चात आगे हम भवस्थिति याने आयुष्यद्वार की विचारणा करेंगे ।

विश्व के जीव भेदों के शरीर प्रमाण की विविधता और विशेषता देखने के पश्चात हमें सर्वज्ञ की सर्वज्ञता पर भरोसा हो जाता है, परंतु इन जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट आयुष्य की बात तो हमें विस्मित ही बना देती हैं, जीवभेदों के आयुष्य के रहस्य को पाने के लिये आगे बढे, प्रथम एकेंद्रिय के आयुष्य की बात बताते हैं -

बावीसा पुढवीए, सत्तय, आउस्स तिन्नि वाउस्स ।
वास सहस्सा दसतरु, गणाण तेऊतिरत्ताउ ।।३४।।

अर्थ : पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट आयु बावीस हजार वर्ष है, अपकाय का आयुष्य सात हजार वर्ष है । वायुकाय का आयुष्य तीन हजार वर्ष का है । प्रत्येक वनस्पतिकाय का आयुष्य दश हजार वर्ष का है । और तेउकाय का आयुष्य तीन अहोरात्रि का जानना ।

यहाँ गाथार्थ में जो उत्कृष्ट स्थिति कही है वह निरुपद्रव्य स्थान में रहे जीवों की जानना । जिस स्थान में उन्हें आघात, प्रत्याघात के निमित्त न मिलते हों, सामान्यत : मध्यम कक्षा के आयुष्य वाले जीव ही ज्यादा जानना ।

अब विकलेंद्रिय का आयुष्य बताते हैं -

वासाणी बारसाउ, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं तु ।
अउणापन्नदिणाइं, चउरिंदीणं तु छम्मासा ।।३५।।

अर्थ : द्विइंद्रिय का बारह वर्ष, तेइंद्रिय का उन्नपचास (४९) दिनका और चउरेंद्रिय का छः महिने जानना विकलेन्द्रिय की भवस्थिति आयुष्य जानने के पश्चात अब देव, नारकी, चुतुष्पद और मनुष्य का आयुष्य बताते हैं ।

सुरनेरीयाणं ठिई, उक्कोसा सागराणि तित्तिसं ।
चउप्पयतिरियमणुस्सा, तिन्नितिय पलिओवमा हुंति ।। ३६।।

अर्थ - देव और नारको की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम और चतुष्पद, तिर्यंच और मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम होती है ।

जलचरउरभुयगाणं, परमाउ होई पुव्वकोडीओ ।
पक्खीणं पुण भणीओ, असंखभागो य पलियस्स ।। ३७।।

अर्थ - जलचर, उरपरिसर्प, तथा भुजपरिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य क्रोड पूर्व वर्ष का होता है । उसी तरह पक्षीओं का पल्योपम के असंख्यातवे भाग का जानना । इस प्रकार यहाँ सभी जीवों का आयुष्यमान जानने के पश्चात सूक्ष्म और संमुच्छिम जीवों का आयुष्य बताते हैं ।

सव्वे सुहुमासाहारणा य समुच्छिमा मणुस्साय ।
उक्कोस जहन्नेणं, अंत मुहुतं चिय जियंति ।।३८।।

अर्थ : सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव, बादर साधारण वनस्पतिकाय (अनंतकाय, निगोद) और संमुर्च्छिम मनुष्य उत्कृष्ट और जघन्य से अंतमुहूर्त जीते है ।

ओगाहणाउ - माणं, एवं संखेवओ समक्खायं ।
जे पुण इत्थ विसेसा, विसेस - सुत्ताउ ते नेया ।।३९।।

अवगाहना और आयुष्य द्वार की पूर्णाहूति करते हुए कहते हैं किं विशेष जानना हो तो अन्य सूत्र (श्री बृहद् संग्रहणी वगैरह) पढिये ।

स्वकाय स्थिति :- जीव बारंबार स्वयं की जाति में जितने वक्त तक उत्पन्न हो (जन्म - मरण करें) वह उनकी स्वकाय स्थिति कहलाती है ।

पृथ्वीकायादि स्थावर जीव, द्विइंद्रियादि, विकलेंद्रियादि जीव, तथा तिर्यंच-मनुष्य जीव एक जाति में ममत्व भावना के कारण बारंबार जन्म-मरण करते हैं । पर इस स्वजाति में ही जन्म मरण करने में कौन कौन से नियम हैं, उसकी स्पष्टता एवं समझ यहाँ दी गई है -

एगिंदिया य सव्वे असंख उस्सप्पिणी सकायंम्मि ।
उवज्जंति चयंति य अनंत - काया अणंताओ ।।४०।।

गाथार्थ :- सर्व एकेंद्रिय जीव तथा अनंतकाय जीव अनुक्रम से असंख्य उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी तथा अनंत उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी तक स्वकाय में ही उत्पन्न होते हैं और च्यवते है ।

जैन शासन का कालचक्र दो विभागो में विभाजित है - १) उत्सर्पिणी और २) अवसर्पिणी - दोनों उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी में छःछः आरे होते हैं,प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी १० कोटा कोटि सागरोपम का होता है ।

यहां एकेंद्रिय जीवो में पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय एंव वनस्पतिकाय की स्वकाय स्थिति असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कहते हैं । पर अनंतकाय जीवों की उससे भी अधिक बताते हुए

अनंत अवसर्पिणी उत्सर्पिणी कहते है ।

इसी बात को विशेष विवेचन से विचारते हुए पता चलता है कि पृथ्वीकाय के ४ भेद, अपकाय के ४ भेद, तेउकाय के चार भेद, वायुकाय के चार भेद इस तरह कुल १६ भेद की स्वकाय स्थिति असंख्यात उत्ससर्पिणी तथा असंख्यात अवसर्पिणी होती है ।

प्रत्येक वनस्पतिकाय के दोनों भेद की स्वकाय स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम होती है ।

साधारण वनस्पतिकाय के (अनंतकाय के) ४ भेद की स्वकाय स्थिति अनंत उत्सर्पिणी तथा अनंत अवसर्पिणी की होती है ।

संखिज्ज समा विगला, सत्तट्ठभवा पणिंदि तिरिमणुआ।
उवज्जंति सको, नारय देवाय नो चेव ।। ४१।।

गाथार्थ : विकलेंद्रिय जीवों की स्वकायस्थिति संख्याता भव है । पंचेंद्रिय एवं मनुष्य की स्वकाय स्थिति ७-८ भव है, जबकि नारकी और देवलोक के जीवों की स्वकाय स्थिति नहीं है ।

विकलेन्द्रिय याने द्विइंद्रिय, तेइंद्रिय तथा चउरेंद्रिय जीवों के पर्याप्त अपर्याप्त मिलकर छः भेदों की स्वकाय स्थिति संख्याता भव अथवा संख्याता वर्षो की है ।

तिर्यंच पंचेंद्रिय की तथा मनुष्य की बात बताते हुए उनकी स्वकाय स्थिति ७ अथवा ८ भव वह क्यों ?

तिर्यंच पंचेंद्रिय अथवा मनुष्य मर कर फिर से उसी जाति में सलंग ७ भव संख्याता वर्ष का करें पर आठवां भव उसी जाति में करना हो तो संख्याता वर्ष का तो न ही करे, उसे आठवां भव असंख्याता वर्ष के आयुष्य का ही करना पडे याने उसे युगलिक क्षेत्र में ही जाना पडे । वहाँ से नियमा देवभव में ही जाना पडे वहाँ से फिर तिर्यंच या मनुष्य भव में जा सकता हैं ।

संमुर्च्छिम तिर्यंच के दस भेद तथा संमुर्च्छिम मनुष्य के १०१ भेद ऐसे कुल १११ भेद की स्वकाय स्थिति ७ भव की है ।

गर्भज तिर्यंच के १० भेद तथा कर्मभूमि के ३० (पर्याप्त और अपर्याप्त) मनुष्य के भेद की स्वकाय स्थिति ७-८ भव की होती है ।

यहाँ मात्र कर्मभूमि के मनुष्यों के भेद लिये है, कारण की अकर्मभूमि एवं ५६ अंतरद्वीप में युगलिक हैं, जो असंख्यात वर्ष के आयुष्य वाले हैं, उनके लिये स्वकाय स्थिति नहीं है । युगलिक (अंतरद्वीप एवं अकर्मभूमि के मनुष्य) नियमा मर कर देवलोक में जाते हैं । यही बात कर्मभूमि में युगलिक काल के मनुष्यो के लिये समझना । वे भी असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले तथा आयुष्य पूर्ण करके देवलोक में जाने वाले होते हैं ।

देव तथा नारकी के जीवों की स्वकायस्थिति नहीं है, कारण देव मर कर देव नहीं होते और नारकी मर कर नारकी नहीं होते ।

प्राण :- जीवन जीने के लिये जरुरी शक्ति वो प्राण है । जिसके वियोग में जीव की मृत्यु होती है । प्राण दो प्रकार के है - १) भाव प्राण २) द्रव्य प्राण

भावप्राण आत्मा के साथ जुडे हुए हैं, जबकि द्रव्य प्राण देह के साथ जुडे हुए हैं । द्रव्य प्राण ४ हैं - १) इंद्रियप्राण वह अशुद्ध चेतनामय है २) योगबल प्राण अनंत वीर्य रुप से विपरीत है । ३) आयुष्य प्राण जो अक्षय स्थिति से विपरीत है ४) श्वासोश्वास ।

इंद्रियप्राण पाँच है - १) स्पर्शेंद्रिय प्राण २) रसनेंद्रिय प्राण ३) घ्राणेंद्रिय प्राण ४) चक्षुरींद्रिय प्राण ५) श्रोतेंद्रिय प्राण ।

योगबाल तीन है - १) मनोबल प्राण २) वचनबल प्राण ३) कायबल प्राण

दसहा जिआण पाणा इंदिय उसास आउ बल रुवा ।
एगिंदिएसु चउरो विगलेसु छः सत्त अट्ठेव ।। ४२।।

गाथार्थ :- जीवों को दस प्रकार के प्राण होते हैं । पांच इंद्रिय, श्वासोश्वास, आयुष्य और तीन बल ऐसे दस प्राण होते हैं । उसमें भी एकेंद्रिय को चार प्राण और विकलेंद्रिय के छ, सात, आठ प्राण होते हैं ।

कुल दस प्राणों में से एकेंद्रिय को याने पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय को चार प्राण होते हैं । कारण एकेंद्रिय होने से फक्त स्पर्शेंद्रिय प्राण और कायबल प्राण होते हैं । अन्य इंद्रियप्राण या अन्य योग बल प्राण होता नहीं । आयुष्य प्राण और श्वासोश्वास प्राण तो सभी जीवों को होते हैं ।

इससे एकेंद्रिय को नीचे मुजब ४ प्राण होते हैं ।
१) स्पर्शेंद्रिय प्राण २) कायबल प्राण ३) आयुष्य प्राण ४) श्वासोश्वास प्राण

द्विइंद्रिय ने स्पर्शेंद्रिय के साथ रसनेंद्रिय भी होती है । इससे कायबल के साथ वचनबल भी होता है । दो प्राण अधिक होने से कुल छः प्राण होते हैं, वे निचे मुजब हैं -
१) स्पर्शेंद्रिय प्राण २) रसनेंद्रिय ३) कायबल प्राण ४) वचनबल प्राण ५) आयुष्य प्राण ६) श्वासोश्वास प्राण
तेइंद्रिय को स्पर्शेंद्रिय और रसनेंदिरय के साथ घाणेंद्रिय भी होती हैं, इससे बेइंद्रिय के छः प्राण में घ्राणेंद्रिय प्राण बढने से कुल सात प्राण होते हैं -
१) स्पर्शेंद्रिय प्राण २) रसनेंद्रिय ३) घ्राणेंद्रिय प्राण ४) कायबल प्राण ५) वचनबल प्राण ६) आयुष्य प्राण ७) श्वासोश्वास प्राण
चतुरेंद्रिय में स्पर्शेंद्रिय, रसनेंद्रिय, घ्राणेंद्रिय के साथ चक्षुरीन्द्रिय बढने से कुल ८ प्राण होते हैं -
१) स्पर्शेंद्रिय प्राण २) रसनेंद्रिय ३) घ्राणेंद्रिय प्राण ४) चक्षुरींद्रिय प्राण ५) कायबल प्राण ६) वचनबल प्राण ७) आयुष्य प्राण ८) श्वासोश्वास प्राण

असन्नि - सन्नि - पंचिदिअेसु, नव दस कम्मेण बोधव्वा ।
तेहिं सह विजओगो जीवाणं भण्णंए मरणं ।। ४३।।

गाथार्थ - असंज्ञि याने बिनामन के और संज्ञि याने मन वाले पंचेंद्रिय जीवों को अनुक्रम से नव और दस प्राण जानना । इन प्राणों के साथ ''वियोग'' ही जीवों का ''मरण'' कहलाता हैं ।

पंचेंद्रिय जीव दो प्रकार के हैं १) संज्ञि याने मनवाले और असंज्ञि याने मन बिना के ।

देव, नारकी तथा गर्भज मनुष्य और तिर्यंच मनवाले हैं, इससे संज्ञि पंचेंद्रिय है वे मनोबल सहित हैं, इसलिए दस प्राण हैं । जबकि एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय तथा संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेंद्रियऔर संमूर्च्छिम मनुष्य सभी मन बिना के होने से असंज्ञि हैं । यहाँ असंज्ञि पंचेंद्रिय के नौ प्राण बताते है, उनके पास मनोबल होता नहीं हैं ।

संज्ञि पंचेंद्रिय को सभी दस प्राण होते हैं ।

कितनेक संमूर्च्छिम मनुष्यों में वचनबल होता नहीं इससे नौ के बदले आठ उनके आठ प्राण होते है, तथा ऐसे संमूर्च्छिम मनुष्य जब श्वासोश्वास पर्याप्ति पूर्ण किये बगैर ही मरते हैं, तब उन्हें श्वासोश्वास प्राण भी न होने से सिर्फ सात ही प्राण होते हैं ।

अब गाथा के पिछले आधे भाग में मरण किसे कहते है ? वह बताते हुए कहते हैं '' जिस जीव को जितने प्राण हो उनसे उनका सर्वथा वियोग वह जीव का मरण हैं ।''

इस व्याख्या को देखते हुए ख्याल आता है कि आत्मा का द्रव्य प्राणों से वियोग होता है, उसे व्यवहारिक भाषा में मरण कहते हैं । वह मरण संसारी अवस्था का हैं, आत्मा का नहीं । आत्मा के भाव प्राण है और आत्मा के भाव प्राण कभी भी आत्मा से अलग होते नहीं, इससे आत्मा का मरण संभवित नहीं, इसिलिए आत्मा अमर है । सिद्ध के जीव अमर हैं ।

नव - तत्व.... (मोक्ष तत्व)

किसी भी आराधक को प्रश्न पूछें - धर्म किस लिये करते हो ?

जवाब मिलता है - ''मोक्ष के लिये''

धर्म मोक्ष के लिये होता है इसमें दो मत नहीं । धर्म मोक्ष के लिये ही करना चाहिये, यह भी इतना ही सच है । परंतु हम जो जवाब देते हैं, उसके पीछे हमारी समझ कितनी काम करती है । हम मोक्ष का कैसा और कितना स्वरुप जानते हैं ? परमात्मा ने केवलज्ञान में मोक्ष का स्वरुप देखा अनुभव किया और उसका हूबंहू वर्णन विस्तार से हमारे समक्ष रखा ।

कितनी असीम कृपा बरसी हमारे उपर ?

मोक्ष को बोगस कहने वालों की इस दुनिया में कभी नहीं है । ऐसे सभी प्रकार के नास्तिको को सटीक उत्तर देकर मोक्ष की विद्यमानता सिद्ध कर बताई ।

पुन्य भोगने के लिये देवलोक है, पाप भोगने के लिये नरक है, तो पुन्य पाप से रहित जीवों के लिये भी अवश्य स्थान होना चाहिये । वह स्थान कहाँ और कैसा ?

मोक्ष के जीव कितने ? मोक्ष के जीव कैसे ?

इन सभी का सुंदर जवाब ज्ञानी भगवंतो ने मोक्ष तत्व की समझ देते हुए कहा है । इस मोक्षतत्व को पाने के अधिकारी कौन ? कौन इस मोक्ष तत्व को पा सकता है ? यह सभी बातें खूब रसप्रद हैं । हमें ललचाने वाली और मोक्ष गति की तरफ आगे बढने की अपूर्व प्रेरणा करने वाली है । आइए, ज्ञान के संग मोक्ष की मानसिक सफर करके अनोखा आनंद अनुभव कर आत्म कल्याण साधे ।

संतपय पुरवणया, दव्वपमाणं च रिवत्त फुसणाय ।
कालो अ अंतर भागो, भावे अप्पा बहु चेव ।। ४३।।

सत्पदप्ररुपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अन्तर, भाग, भाव और अल्पबहुत्व मोक्ष तत्व की विचारणा नौ द्वारों से हो सकती है, जो यहाँ बताये गये हैं । ये नौ द्वार निम्नानुसार हैं -

१) सत्पदप्ररुपणा द्वार :- मोक्ष के संबंध में विद्यमान (स्थित) पद की प्ररुपणा प्रतिपादन करना, सत्पद प्ररुपणा द्वार है ।

२) द्रव्यप्रमाण द्वार - सिद्ध के जीव द्रव्य कितने हैं ? इनके संख्या संबंधी विचारणा करना वह द्रव्य प्रमाण द्वार है ।

३) क्षेत्रद्वार - सिद्ध के जीवों का अवगाहना क्षेत्र कितना है, यह विचारणा क्षेत्रद्वार है ।

४) स्पर्शनाद्वार - सिद्ध के जीव कितने आकाश प्रदेश को स्पर्श करके रहते हैं, उसकी विचारणा वह स्पर्शना द्वार है ।

५) काल द्वार - सिद्ध के जीव सिद्ध गति में कितने काल तक रहेंगें ? (सादि - अनंत) उसकी विचारणा काल द्वार है ।

६) अंतर द्वार - सिद्ध के जीवों में अन्तर नहीं है, उसकी विचारणा करना अंतरद्वार है ।

७) भागद्वार - सिद्ध के जीव संसारी जीवों के कितनेवें भाग में है, उसकी विचारणा करना वह भागद्वार है ।

८) भावद्वार - क्षायिक वगैरे पाँच भाव में से सिद्ध के जीव किस भाव के अंतर्गत हैं, उसकी विचारणा करना वह भावद्वार है ।

९) अल्पबहुत्व द्वार - सिद्ध के पंद्रह भेद में से किस भेद में जीव कम हैं, किस भेद में जीव ज्यादा है, उसकी विचारणा करना अल्पबहुत्व द्वार है ।

नौ द्वार की सामन्य समझ देने के पश्चात अब एक-एक द्वार की विशेष से विचारणा आगे की गाथाओं

में करने में आयी है ।

संतु सुद्ध पयत्ता विज्जंतं रव कुसुमंव्वन असंतं ।
मुक्खत्ति पयं तस्सउ, परुवणा मग्गणाई हिं ।।४४।।

भावार्थ - मोक्ष सत् है, शुद्ध पद होने से विद्यमान है, आकाश के फूल के समान अविद्यमान नहीं है । मोक्ष इस प्रकार का पद है और मार्गणा आदि द्वारा इसकी विचारणा, प्ररुपणा होती है ।

पदों का विभाजन दो प्रकार से हो सकता है -

१) अकेला (एक) पद अथवा शुद्ध पद

२) सम्मिलित (जुडे हुए) अथवा अशुद्ध पद - जैसे ''आकाश-पुष्प''

अकेला एक पद जहाँ है, वहाँ उस नाम की वस्तु है ही ऐसा स्वीकार किया जाता है । पद याने अर्थ और व्युत्पत्ति सहीत का शब्द ।

मोक्ष यह पद है कारण कि उसका अर्थ भी है और उसकी व्युत्पति भी है । जहाँ सम्मिलित (जुडे हुए) शब्द हैं वहाँ वस्तु हो भी और न भी हो । जैसे - राजपुत्र । इसमें दो पद हैं, जो जुडे हुए हैं, परंतु यह अशुद्ध पद है । कुछ शब्द-जुडे हुए होते हैं, वे शुद्ध न होने पर भी उनकी सत्ता होती है, उनकी विद्यमानता संभवित है । लेकिन कुछ अविद्यमान होते हैं, जैसे आकाश - पुष्प :- आकाश का पुष्प यह जुडा हुआ पद अशुद्ध है, उसी प्रकार असत्य है । गुलाब का फूल, मोगरे का फूल होता है पर आकाश का फूल होता ही नहीं है, वह अविद्यमान है ।

इससे मोक्ष पद है, मोक्ष पद विद्यमान है, मोक्ष यह अकेला सार्थक व शुद्ध पद है, उसकी विचारणा मार्गणाओं का द्वारा हो सकती है ।

गइ इंदिए अ काए, जोए वेए कसाय नाणे अ ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहारे ।। ४५।।

गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, चारित्र, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यकत्व, संज्ञि और आहार ।

यहाँ १४ मार्गणाऐं बताई गई हैं । इन १४ मार्गणाओं के विशेष से ६२ भेद होते हैं, वे नीचे मुजब है -

मार्गणा	**भेद**	
१. गति	४-	देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक
२. इंद्रिय	५ -	एकेंद्रिय, द्विइंद्रिय, तेइंद्रिय, चतुरेंद्रिय, पंचेंद्रिय,
३. काय	६-	पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय
४. योग	३-	मनोयोग, वचनयोग, काययोग
५. वेद	३-	स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसकवेद
६. कषाय	४-	क्रोध, मान, माया, लोभ
७. ज्ञान	८-	मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यव, केवलज्ञान, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान
८. चारित्र	७-	सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात, देशविरति और सर्व विरति
९. दर्शन	४-	चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, केवल दर्शन
१०. लेश्या	६-	कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, और शुक्ल लेश्या
११. भव्य	२-	भव्य और अभव्य
१२. सम्यक्त्व	६-	उपसम, क्षयोपशम, क्षायिक, मिश्र, सास्वादन और मिथ्यात्व
१३. संज्ञि	२-	संज्ञि और असंज्ञि
१४. आहार	२-	आहार और अनाहार

इन चौदह मार्गणाओं द्वारा विचारणा करते इनमें मोक्ष कहाँ कहाँ संभवित है, इसका ख्याल आये बगैर नहीं रहता । चौदह मार्गणाओं के बासठ (६२) भेदों ने मोक्ष किस किस मार्गणा में है और कहां नहीं ये बात

अगली गाथा में स्पष्ट की गई है ।

नरगई, पणिंदि तस भव, सन्नि अहक्खाय खइअ सम्मते
मुक्खोणाहार केवल, दंसणनाणे न सेसेसु ।।४६।।

भावार्थ - मनुष्य गति, पंचेंद्रिय जाति, त्रसकाय, भव, संज्ञि यथाख्यात चारित्र, क्षायिक सम्यकत्व, अनाहार, केवलदर्शन और केवलज्ञान में मोक्ष है और शेष में नहीं ।

चौदह मार्गणा के ६२ द्वार की विचारणा करने से पता चलता है, कि चौदह मार्गणा में से १० मार्गणा में ही मोक्ष की संभावना है । चार मार्गणा में तो मोक्ष संभव ही नहीं ।

प्रथम गति मार्गणा में मनुष्य गति में ही मोक्ष है, अन्य तीन गति में मोक्ष नहीं ।

दूसरी जाति मार्गणा में पंचेंद्रिय में ही मोक्ष है, अन्य चार जाति में मोक्ष नहीं है ।

तीसरी काय मार्गणा में त्रसकाय में ही मोक्ष है, अन्य पाँच काय में नहीं ।

चौथी योग मार्गणा में मोक्ष होता ही नहीं, कारण आत्मा अयोगी हैं ।

पाँचवी वेद मार्गणा में मोक्ष होता ही नहीं, कारण आत्मा अवेदी है ।

छठवी कषाय मार्गणा में मोक्ष होता ही नहीं, कारण आत्मा अकषायी हैं ।

सातवीं ज्ञान मार्गणा में केवलज्ञान में ही मोक्ष है । अन्य सातज्ञान में मोक्ष नहीं ।

आठवीं चारित्र मार्गणा में यथाख्यात चारित्र में ही मोक्ष है, अन्य छः चारित्र में मोक्ष नहीं ।

नवमी दर्शन मार्गणा में केवल दर्शन में ही मोक्ष है, अन्य तीन दर्शन में मोक्ष नहीं ।

दसवीं लेश्या मार्गणा में मोक्ष है ही नहीं, कारण आत्मा अलेशी है ।

ग्यारहवीं भव्य मार्गणा में भव्य में ही मोक्ष है, अभव्य में नहीं ।

बारहवी सम्यकत्व मार्गणा में क्षायिक सम्यकत्व में ही मोक्ष है, अन्य पांच सम्यकत्व में मोक्ष नहीं ।

तेरहवीं संज्ञि मार्गणा में संज्ञि में ही मोक्ष है, असंज्ञि मार्गणा में मोक्ष नहीं ।

चौदहवीं आहार मार्गणा में अनाहार में ही मोक्ष है, आहार मार्गणा में मोक्ष नहीं ।

इस तरह मनुष्य गति, पंचेंद्रिय जाति, त्रसकाय, भव्य, संज्ञी, यथाख्यात चारित्र क्षायिक सम्यकत्व, अनाहार, केवल दर्शन और केवलज्ञान में ही मोक्ष है । दूसरे कहीं किसी भी मार्गणा में मोक्ष नहीं है ।

दव्वपमाणे सिद्धा, जीव दव्वाणि हुंति णंताणि ।
लोगस्स असंखिज्जे, भागे इक्कीय सव्वेवि ।। ४७।।

गाथार्थ - सिद्धों के द्रव्य प्रमाण द्वार में अनंत जीव द्रव्य हैं । एक सिद्ध परमात्मा तथा सभी सिद्ध परमात्मा लोकाकाश के असंख्यातवें भाग जितने क्षेत्र में रहते हैं ।

प्रस्तुत गाथा में दूसरे और तीसरे इन दो द्वारों का विश्लेषण है -

द्रव्यप्रमाण द्वार - सिद्धो के अनन्त जीव हैं । जघन्य से १ समय के अंतर से और उत्कृष्ट से छः महिने के अंतर से एक जीव अवश्य मोक्ष में जाता है

एक समय में जघन्य से एक जीव और उत्कृष्ट से १०८ जीव मोक्ष में जाते हैं । इस नियमानुसार अनादि काल से विश्व का चक्र चल रहा है, अतः द्रव्य से सिद्ध के जीव अनंत है ।

क्षेत्रद्वार - एक सिद्ध की अवगाहना जघन्य से १ हाथ ८ अंगुल होती है तथा अत्कृष्ट से १३३३ हाथ ८ अंगुल होती है । सिद्धशिला लोक के असंख्यातवें भाग जितना क्षेत्र है, इसलिये एक सिद्ध भी लोक के असंख्यातवें भाग में रहा हुआ है ।

सर्व सिद्ध जीवों की विचारणा करें तो सिद्ध के सभी जीव सिद्धशीला के उपर बिराजमान है । वे अलोक की आदि और लोक के अंत में ४५ लाख योजन विस्तारवाली सिद्धशिला के उपर गाउ के छठवें भाग जितने उर्ध्व प्रमाण आकाश विस्तार में रहे हुए हैं । सर्व सिद्धो सहित सिद्धशिला के उपर का क्षेत्र, सर्व क्षेत्र के असंख्यातवे भाग जितना ही है । इसीलिये सर्व सिद्ध जीवों की अपेक्षा से भी लोक के असंख्यातवे भाग जितना ही है ।

फुसणा अहिआ कालो, इग सिद्ध पडुच्च साई ओणंतो ।
पडिवाओ भावाओ, सिद्धाणं अंतरं नत्थि ।।४८।।

गाथार्थ :- (सिद्ध के जीव को क्षेत्र की अपेक्षा) स्पर्शना अधिक है, एक सिद्ध की अपेक्षा से सादि अनंत काल है, प्रतिपात (संसार में पुनः पतन) का अभाव होने से सिद्धों में अंतर नहीं है ।

इस गाथा में तीन द्वार की विचारणा है -

१) स्पर्शना द्वार २) काल द्वार ३) अन्तर अनुयोग द्वार

१) स्पर्शना द्वार : एक परमाणु आकाश प्रदेश में समाय तब ७ आकाश प्रदेश की स्पर्शना कहलाती है

१) एक आकाश प्रदेश में वह रहा हुआ है उसकी स्पर्शना

२) चार दिशा में चार आकाश प्रदेश में स्पर्शना है ।

३) उर्ध्व और अधो दिशा में दो आकाश प्रदेश में स्पर्शना है ।

१+४+२=७ आकाश प्रदेश की स्पर्शना है अवगाहना मात्र १ आकाश प्रदेश है । प्रत्येक द्रव्य की अवगाहना क्षेत्र से स्पर्शना ज्यादा ही होती है । इसी तरह सिद्धो को अवगाहना क्षेत्र से स्पर्शना अधिक है । तथा सिद्ध से सिद्ध की परस्पर स्पर्शना भी अधिक है ।

कालद्वार :- एक सिद्ध की अपेक्षा से विचार करने पर वह जीव जब मोक्ष में जाय वह काल उस सिद्ध की आदि है । फिर मोक्ष से वह जीव कभी इस संसार में नहीं आयेगा अर्थात पुनरागमन नहीं होने से सिद्धावस्था अनंत है । इस प्रकार एक सिद्ध की अपेक्षा से आदि अनन्त काल जाने । एवं अनेक (अनंत) सिद्ध जीवों की अपेक्षा से अनादि अनंतकाल जाने , क्योंकि सबसे पहले कौन सिद्ध मोक्ष में गया ? यह प्रश्न निरुत्तर है ।

अन्तरद्वार :- पहले सिद्धत्व, तत् पश्चात बीच में संसारित्व तत्पश्चात पुनः सिद्धत्व इसका नाम अंतर है । सिद्ध जीवों को अंतर (पतन) का अभाव है क्योंकि सिद्ध जीव पुनः संसार में आते नहीं है । सिद्धक्षेत्र में भी सिद्धो में अन्तर नहीं क्योंकि जहाँ एक सिद्ध है उसी के साथ उसी अवगाहना में अनेक सिद्ध हैं, परस्पर सटकर रहने के कारण वहाँ भी एक दूसरे में अंतर नहीं ।

सव्व जियाणं मणंते, भागे ते तेसिं दंसणं नाणं ।
खइए भावे परिणामिए, अ पुण होई जीवतं ।। ४९।।

भावार्थ :- वे सब सिद्धों के जीव सर्व जीवों के अनंतवें भाग में है । उनका दर्शन और ज्ञान क्षायिक है और जीवत्व पारिणामिक भाव का है । प्रस्तुत गाथा में भाग तथा भाव इन दो द्वारों का विश्लेषण है ।

भाग द्वार :- सिद्ध जीव - जो कि अभव्य से अनंत गुना है, तब भी संसारी जीवों के अनंतवे भाग जितने ही हैं ।

भाव द्वार :- पाँच प्रकार के भाव हैं १) औपशमिक २) क्षायिक ३) क्षयोपशमिक ४) औदायिक ५) पारिणामिक भाव

इनमें से केवलज्ञान, केवल दर्शन ये सिद्धों के क्षायिक भाव है और जीवत्व यह एक पारिणामिक भाव है ।

अल्पबहुत्व अनुयोग द्वार

थोवा नपुसं सिद्धा, थ्थी नर सिद्धा क्रमेण संखगुणा ।
इअ मुख्खतत्तमेअं, नवतत्ता लेसओ भणिआ ।। ५०।।

नपुंसकलिंग से थोडे सिद्ध हैं । उससे स्त्रीलिंग

तथा पुरुषलिंग सिद्ध अनुक्रम से संख्यात गुना अधिक हैं। इस प्रकार का यह मोक्ष तत्व है तथा नवतत्व भी संक्षेप से कहे गये हैं।

नपुंसकलिंग वाले जीव एक समय में उत्कृष्ट से १० मोक्ष में जाते हैं।

स्त्री जीव एक समय में उत्कृष्ट से २० मोक्ष में जाती है।

पुरुषजीव एक समय में उत्कृष्ट से १०८ मोक्ष में जाते हैं।

इसलिये नपुंसकलिंग सिद्ध अल्प हैं, स्त्रीलिंग सिद्ध उनसे द्विगुणित होने से संख्यात गुना अधिक हैं, स्त्रियों से भी पुरुषलिंग सिद्ध संख्यात गुना अधिक हैं।

सिद्धों के शेष भेदों का अल्पबहुत्व

▶ जिन सिद्ध अल्प और अजिन सिद्ध उनसे असंख्यगुणा हैं।

▶ अतीर्थ सिद्ध अल्प, तीर्थ सिद्ध उनसे असंख्यगुना हैं।

▶ गृहस्थ लिंग सिद्ध अल्प, उनसे अन्यलिंग सिद्ध संख्यात गुना उनसे स्वलिंग सिद्ध संख्यात गुना हैं।

▶ स्वंयबुद्ध सिद्ध अल्प, इनसे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध संख्यात गुना, उनसे बुद्धबोधित सिद्ध संख्यात गुना।

▶ अनेक सिद्ध अल्प और एकसिद्ध उनसे संख्यात गुना।

इस तरह मोक्ष तत्व जानने योग्य है। जानकर उस दिशा में प्रयाण हो और आत्मकल्याण साध सकें ऐसा पुरुषार्थ करने योग्य है।

तीर्थंकरो की जीवन यात्रा

(शासनपति प्रभु महावीर)

अचल गच्छाधिपति प.पू.आ.भ.श्री. गुणसागरसूरि म.सा.

चार ज्ञानवाले प्रभु महावीर ने दीक्षा के बाद तुरंतु वहाँ से विहार किया, जनसमुदाय प्रभु को जाते देखते रहे, भगवान नजर से दूर हुए तब तक देखते रहे, फिर कहने लगे ''हे वीर ! आपके बिना हमें सब शुन्य अरण्य समान लगेगा । अब तुम्हारे सहवास के बिना आनंद कहाँ से आयेगा ? हे वीर । हमारे नेत्रों को अमृतांजन जैसा आपका प्रियदर्शन अब हमें कब होगा ? हे वीर ! आप तो रागद्वेष रहित हो, हमें याद कर कभी दर्शन देने जल्दी जल्दी पधारते रहना ।''

ऐसा कहते हुए जनसमुदाय विरह का दुःख करते हुए अपने अपने स्थान पर गया ।

इन्द्रादि देवोंने दीक्षा प्रसंग में गोशीर्षचंदनादि सुगंधित द्रव्यों से प्रभु की पूजा की थी, उसकी सुगंध चार माह से भी अधिक समय तक प्रभु के शरीर पर रही थी । उस दिव्य सुगंधसे आकर्षित होकर दूरदूर से भी आकर्षित होकर आनेवाले भ्रमर प्रभु को डंख देने लगे । युवान लोग ऐसी सुगंध देखकर प्रभुसे सुगंधी पदार्थों की माँग करने लगे । परंतु मौन धारण कर रहने वाले प्रभु उत्तर देते नहीं थे, अतः क्रोधित होकर वे प्रभु को उपसर्ग करने लगे, दुःख देने लगे । कितनी स्त्रियाँ प्रभु का अलौकिक रुप सौभाग्य और शरीर से निकलने वाली सुगंध को देखकर भोग की प्रार्थना कर अनुकूल उपसर्ग करने लगी । प्रभु तो मेरु पर्वत जैसे अचल रहकर समभाव से सब सहन करते विचरण करने लगे । दो घडी दिन बाकी रहा तब कुमारगाँव के पास आकर रात को कायोत्सर्ग ध्यान में रहे ।

उस स्थानपर कोई गोवालिया खेतों में हल चलाकर शाम को बैलों को छोड, गायें दुहने चला गया । बैल चरते चरते जंगल में दूर निकल गये । गायें दुहकर गोपालक आया उसने प्रभु से पूछा कि, ''हे आर्य ! मेरे बैल कहाँ गये ? '' प्रभु तो मौन ही रहे । अतः उसने सोचा की प्रभु को पता नहीं और वह जंगल में उन्हें खोजने निकल गया । बैल चरते चरते उतरती रात में प्रभु जहाँ कायोत्सर्ग में खडे थे, वहाँ लौटकर बैठ गये । गोवालिया भी रातभर बैलों को खोजते खोजते थककर वहीं पर लौटा, उसने बैलों को वहाँ बैठा पाया । अतः क्रोधित होकर उसने सोचा ''इस मनुष्य को पता था फिर भी मुझे पूरी रात जंगल में भटकाया '' ऐसा बडबडाता बैलों के रस्सी से ही प्रभु को मारने दौडा । अवधिज्ञान के उपयोग से इस बात को जानकर इंद्र ने वहाँ आकर गोवालिये को सजा की और प्रभु से कहा ''हे प्रभु ! आपको बारह वर्ष तक बहुत उपसर्ग होने वाले है । अतः आपकी सेवा के लिये मैं तब तक आपके पास रहूँ ।'' प्रभुने उन्हें अनुमति नहीं दी । इसलिये इंद्र ने प्रभु के मासी के पुत्र सिद्धार्थ जो व्यंतर हुआ था, उसे आदेश देकर स्वयं स्वर्ग सिधारे ।

विचरण करते करते प्रभु महावीर देव गंगा नदी के किनारे से जा रहे थे । वहाँ महीन माटी में प्रभुके पदचिन्ह पडे । उनमें चक्र,ध्वज, अंकुश, आदि अंकित हुए दिखाई दे रहे थे । उन्हें देखकर पुष्प नामक सामुद्रिक को लगा यहाँ से कोई चक्रवर्ती अकेला जा रहा है, उसके पास जाकर मैं उसकी सेवा करुं जिससे मेरा दारिद्र चला जाय । ऐसा सोचकर वह शिघ्रतासे, प्रभु के पास आया, परंतु प्रभु को देखकर उसने सोचा,

मैं अत्यंत कष्ट उठाकर व्यर्थ ही सामुद्रिकशास्त्र पढा । ऐसे महान लक्षणों को धारण करनेवाला पुरुष व्रत कष्ट करते दिखाई दें तो सामुद्रिक शास्त्र सब असत्य दिखाई दे रहे हैं, अतः उन शास्त्रो को पानी में ही डाल दूँ ।''

सामुद्रिक पुष्प के इन विचारों को अवधिज्ञान के उपयोग से इंद्र ने जाने वे तुर्त ही वहाँ आये और पुष्पको कहने लगे ''हे पुष्प ! तु सामुद्रिक शास्त्र के अभ्यास का खेद मत कर, वे शास्त्र सही है । यह उत्तम पुरुष तीन लोक के नाथ, सुरासुर नरेंद्र पूजित है । अल्प समय में केवलज्ञान पाकर तीर्थंकर परमात्मा बनेंगे । ''

श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु सर्वविरती स्वीकार ने के बाद छद्मस्थ काल के साढेबारह साल तक शरीर पर की ममता का त्यागकर विचरण करते रहे । उस समय में प्रभु को जो कोई देव विषयक, मनुष्य विषयक और तिर्यंच संबंधी भोग, प्रार्थना आदि अनुकूल उपसर्ग अथवा ताडना तर्जनादि प्रतिकूल उपसर्ग उत्पन्न हुए उन उपसर्गों को प्रभु ने दीनता बिना, क्रोध बिना, निश्चल रहकर निर्भयता से सहन किया । देव, मनुष्य, तिर्यंचो ने किये हुए उपसर्ग किस तरह हुए और प्रभु ने किस तरह सहन किया इसका संक्षिप्त वर्णन करते हैं ।

प्रभु ने पहला चातुर्मास, मोराक संनिवेश में शूलपाणि यक्ष के मंदिर में किया । यह यक्ष पूर्वभव में धनवदेव नामक वणिक का बैल था । धनदेव पांचसौ बैलगाडियों के साथ नदी उतर रहा था तब उसकी सभी गाडियाँ कीचड में फँस गयी । इस मुसीबत में उल्लसित वीर्यवाले उस बैल ने गाडी के बाँयी बाजु जुडकर फँसी हुई पाँचसौ गाडियों को खींच निकाला । यह कार्य करते हुए उसके सब साँधे टूट गये । धनदेव वणिक ने गांववालो को पैसे देकर दुःखी बैल को संभालने का जिम्मा सौंपा, पर गांववालो ने कुछ नहीं किया । बैल आहें भरते हुए भूखा,प्यासा मर गया । मरकर व्यंतर होकर नगरजनों को हैरान करने लगा । नगरज नों ने उसका मंदिर बनाया ।

श्री महावीर प्रभु ने शूलपाणि यक्ष को प्रतिबोध देने के हेतु से प्रथम चातुर्मास उस यक्षमंदिर में ही किया । लोगों ने प्रभु को वहाँ रुकने के लिये मना किया, पर प्रभु ने रात को उसी मंदिर में स्थिरता की । यक्ष ने प्रभु को डराने के लिये पृथ्वी भी फट जाय ऐसा अट्टहास्य किया । हाथी और सर्प के रुप विकुर्वित कर असह्य उपसर्ग किये । इससे प्रभु लेशमात्र भी क्षोभ पाये नहीं । फिर उस यक्षने अन्य कोई होता तो जीव ही चला जाय इस रीत से प्रभु के मस्तक में, कान में, नाक में, आँख में, दांत में, पीठ में, नाखुन आदि में और कुस्थानों में वेदना उपजाई । फिर भी प्रभु को निष्क्रीय देखकर यक्ष प्रतिबोधित हुआ । इस वक्त प्रकट हुए सिद्धार्थ व्यंतर ने कहा कि ''अरे दुष्ट, पापी शूलपाणि । तूने बहुत ही दुष्ट कार्य किया है । चौसठ इंद्रो को भी पूज्य ऐसे त्रिलोकनाथ वीरप्रभु की महाआशातना की है । यदि यह बात इंद्र जानेगा तो तेरे स्थान का भी नाश कर देंगे । और कडी सजा देंगे ।'' सिद्धार्थ व्यंतर के वचन सुन यक्ष भयभीत हो गया । अपने इस अपराध की क्षमा माँगी । प्रभु की पूजा भक्ति करता हुआ प्रभु समक्ष नृत्यपूर्वक गान करने लगा ।

विचरण करते करते दयालु प्रभु कनकखल तापस के आश्रम में चंडकौशिक को प्रतिबोध देने पहुँचे ।

वह चंडकौशिक पूर्वभव में महातपस्वी साधु था । पारणे के दिन एक बर गोचरी को जाते हुए उनके पैर के नीचे मेंढकी आ गई । साथ में रहे हुए साधु ने उस विराधना को प्रतिक्रमण के लिये, इरियावही बोलते वक्त, गोचरी की आलोवना करते वक्त और शाम के

प्रतिक्रमण के वक्त ऐसे तीन बार गुरु को याद दिलाई । इससे गुरु को क्रोध आया, क्रोध से मारने दौडे तब बीच में आये हुए खंभे से टकराने से मृत्यु पाकर ज्योतिषी देव हुए । वहाँ से च्यवकर तापसों के आश्रम में पांचसौ तापसों का अधिपति चंडकौशिक नाम का तापसों का अग्रणी हुआ । वहाँ भी अपने आश्रम के वृक्षों के फल लेनेवाले राजकुमारों को कुहाडी से मारने दौडा, पर रास्ते में कुअे में गिर गया । फिर मृत्यु पाकर उसी आश्रम में पूर्वभव के नामवाला याने चंडकौशिक नामक दृष्टिविष सर्प हुआ । प्रभु को काउसग्ग ध्यान में खडा देख कर सर्प गुस्से से फुफकारता सूर्य की और देख देख कर प्रभु पर दृष्टिज्वाला फेंकने लगा । यह प्रभु मुझ पर गिरे नहीं, इसलिये पीछे पीछे हटने लगा ।

उसने प्रभु को निश्चल देखा, दंश देने पर भी प्रभु व्याकुल न दिखे । एवं दंश देने पर निकलने वाले खून को दूध समान उज्ज्वल देखकर वह प्रभु के सामने ताकने लगा । तब विस्मित और शांत बने चंडकौशिक के लिये ''बुज्झ ! बुज्झ चंडकौशिक'' ऐसे उदगार प्रभु के मुख से निकले । उन शब्दों को सुन जातिस्मरण पाये हुए और पूर्वभव को देखने से पश्चाताप वाले ऐसे चंडकौशिक ने प्रभु को तीन प्रदक्षिणा दी और सोचा की ''अहो ! करुणासमुद्र ऐसे प्रभु ने मुझे दुर्गति में गिरता बचा लिया ।''

फिर पंद्रहदिन तक अनशन लेकर अपने बिल में मुख रखकर समाधि पूर्वक रहा । नागराजा को ऐसा पडा देखकर घी, दूध बेचने जाने वाली गोवालने भक्तिपूर्वक उस नाग की घी, दूध से पूजा करने लगी । घी, दूध की सुगंध से चिंटीयों के झुंड आकर नाग को डंख देने लगे । अतः पीडा का अनुभव करता हुआ फिर भी प्रभु के अमृत दृष्टि से सिंचित ऐसा वह नाग क्रोध किये बिना ही समाधिपूर्वक काल कर आठवें देवलोक में देव हुआ ।

सुरभिपुर पहुँचने से पहले प्रभु ने गंगा नदी पार करने के लिए ''सिध्द' नामक नाविक के नाव में बैठने के लिये पैर रखा उस समय उल्लु का शब्द सुनकर क्षेमिल नामक निमित्तिक ने बताया की ''आज हमें मराणान्तक कष्ट आनेवाला है ।'' परंतु इस महापुरुष के प्रभाव से कष्ट नष्ट होनेवाला है ।''

नाव जब नदी के मझधार में पहूँची तब ऐसा हुआ की वासुदेव के भव में मारे हुए सिंह का जीव नागकुमार भवनपति में 'सुदंष्ट' नामक देव हुआ था । उसने प्रभु को नाव में देखकर अपने पूर्वभव का बदला लेने के लिये नाव डुबाने लगा । परंतु कंबल और संबल नामक देवों ने यह जानकर सुदंष्ट देव को धमकाकर भगा दिया और नाव को बचा लिया ।

मथुरा में जिनदास नामक सेठ था । साधुदासी नामकी उसकी पत्नी थी । वे दोनो श्रावकधर्म का चुस्तता से पालन करते थे । खुश होकर गोपालक ने शेठ शेठानी के ना कहने पर भी समान उम्र के बहुत छोटे छोटे अत्यंत सुंदर आकृतिवाले बलवान ऐसे दो बाल बछडों को सेठ के घर बाँध दिया । सेठ ने सोचा इन बछडों को वापिस करुं तो इन्हें भार उठाना पडेगा, कष्ट भोगने होगे, अतः लौटाने के बजाय बछडों का संवर्धन करें । प्रासुक ऐसे घासचारे से पोषण करने लगे । अष्टमी,चुतर्दशी आदि तिथिपर शेठशेठानी पौषध लेकर धार्मिक पुस्तक पढते । वह सुनकर बैल भी भद्रिक परिणामी होते थे । जिस दिन शेठशेठानी का उपवास होता उस दिन बैल भी घासचारा लेते नहीं और उपवास करते । उनके इस तरह रहने से वे बैल शेठ शेठानी को अति प्रिय हो गये ।

एक दिन शेठ का मित्र उन बैलों को बहुतही सुंदर और बलवान देखकर शेठ को पूछे बिना ही भांडिर वन

में यक्ष की यात्रा में गाडी में जोडकर ले गये । कभी भी गाडी में नहीं जोडे गये ऐसे बैलों को दौड की शर्यत में ऐसा दौडाया की उनके सांधे टूट गये । फिर वह मित्र उन बैलों को शेठ के घर बाँध गया । बैलों की ऐसी स्थिति देखकर शेठ बहुत दुखी हुए । फिर अश्रूपूर्ण नयनों से बैलों को पच्चख्खाण कराकर नमस्कार महामंत्र सुनाया और अच्छी तरह से निर्यामणा कराया, शुभ भाव में रहे हुए वे बैल मृत्यु पाकर नागकुमार निकाय में कंबल-शंबल नामक देव हुए । उन्होंने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर सुदृंष्ट देव नाव में बैठे हुए प्रभु को उपसर्ग कर रहा है यह जाना, वे प्रभु के पास आये सुदृंष्ट्र को भगाकर उपसर्ग का निवारण किया । प्रभुजी का गुणगान किया और नृत्यादि कर सुगंधी जल एवं पुष्पों की वृष्टि कर वे देव अपने स्थान चले गये ।

प्रभु वहाँसे विहार कर ग्रामाक संनिवेश में आये । वहाँ उद्यान में बिभेलक यक्ष ने महिमा किया । प्रभु वहाँ से शालिशिर्ष गांव पहुँचे । वहाँ अत्यंत ठंड थी । उस समय प्रभु कायोत्सर्ग में रहे । तब त्रिपृष्ट वासुदेव के भव में अपमानित हुई विजयवती नाम की रानी मरकर कई भव घूमकर कटपूतना नामक व्यंतरी हुई थी । उसने तापसी का रुप धारण कर अपनी जटा में से हिम जैसा ठंडा पानी प्रभु के उपर छाँटने लगी । कडकडती माघ मास की ठंडी उसमें प्रभु को यह शीत उपसर्ग हुआ, फिर भी प्रभु को ध्यान में निश्चल जानकर वह व्यंतरी प्रभु की क्षमा माँगकर नमस्कार कर अपने स्थान चली गयी । ऐसे शीत उपसर्ग को समभाव से सहन करते हुए प्रभु को लोकावधिज्ञान उत्पन्न हुआ ।

वहाँ से प्रभु भद्रिका नगरी आये । वहाँ चारमासी तप एवं अनेक अभिग्रहों से युक्त छट्ठा चातुर्मास पूर्ण किया । यहाँ छः माह के बाद गोशाला प्रभु के पास आया । चौमासी तप का, पारणा प्रभु ने भद्रिका नगरी के बाहर किया । उपसर्ग रहित ऐसे मगधदेश में प्रभु ने उपसर्ग रहित पने विहार कर आलंभिका नगरी में आकर चौमासी तप कर सातवाँ चातुर्मास पूर्ण किया और चौमासी तप का पारणा नगरी के बाहर किया ।

प्रभु कूर्मग्राम गये, वहाँ वैश्यायन तापस आतापना लेने के लिये अपनी जटाऐं खुली छोडकर मध्यान्ह के समय सूर्य के सामने दृष्टि रखकर आतापना लेने का चालू रखा था, तब सूर्य के ताप से उसके जटा में से जुएं गिरने लगी । उन जुओं को उठाकर तापस पुनः अपनी जटाओं में डाल रहा था । यह देखकर गोशाला ने तापस को यूकाशय्यातर कह कर चिडाना शुरु किया । अतः क्रोधित हुए तापस ने गोशाला पर तेजोलेश्या छोडी । परंतु करुणासमुद्र प्रभु ने तेजोलेश्या के सामने शीतलेश्या छोडी । शीतलेश्या से तेजोलेश्या शीत हो गई । उसका शमन हो गया । गोशाला बच गया । प्रभु की अलौकिक शक्ति देख तापस प्रभु की क्षमा मांगकर नतमस्तक हो गया ।

यह तेजोलेश्या कैसे प्राप्त होती है ? ऐसे गोशाला के प्रश्न से अवश्य भावी भाव के योग से सर्प को दूध पिलाने जैसी अनर्थकारी तेजोलेश्या की विधि सिद्धार्थ ने बताई कि छः महिने तक निरंतर बेले का तप सूर्य की आतापना लेते हुए करे और हर पारणे में एक मूठी उडद के बाकोळे और एक अंजली प्रमाण गरम पानी का उपयोग करे उसे छः महिने के तप के अंत में तेजोलेश्या प्राप्त होती है ।

वहाँ से सिद्धार्थपुरी जाते हुए मार्ग में पहले प्रभु ने बताये हुए तिल के पौधे का प्रदेश आने पर गोशालाने कहा कि ''तिल का पौधा ही उगा नहीं तो तिल की क्या बात करे ?'' उसके ऐसा कहने पर सिद्धार्थ ने कहा

''यही वह तिल का पौधा है और उसके फल्ली में सात तिल आये हैं।''

गोशाला ने अविश्वास से तपास किया तो वही पौधा दिखाई दिया और उसकी फल्ली में सात तिल निकले। इस घटना से उसे लगा की प्राणी मरते हैं, वे जीव उसी शरीर में पुनः उत्पन्न होते हैं। इस पर से अपना नियतिवाद का सिध्दान्त अधिक मजबूत बनाया। वहाँ से गोशाला प्रभु से अलग हो गया। श्रावस्ती नगरी में एक कुंभार की शाला में रहकर छः मास तक छठ तप आदि विधि से उसने तेजोलेश्या सिध्द कर ली। एवं अष्टांग निमित्त का अभ्यास कर खुद को 'सर्वज्ञ' कहलाने लगा।